जुलाई-सितम्बर 2025, वर्ष-2, अंक-3

A Peer reviewed Journal

वितस्ता विमर्श

हिंदी भाषा,साहित्य, संस्कृति व समीक्षा को समर्पित

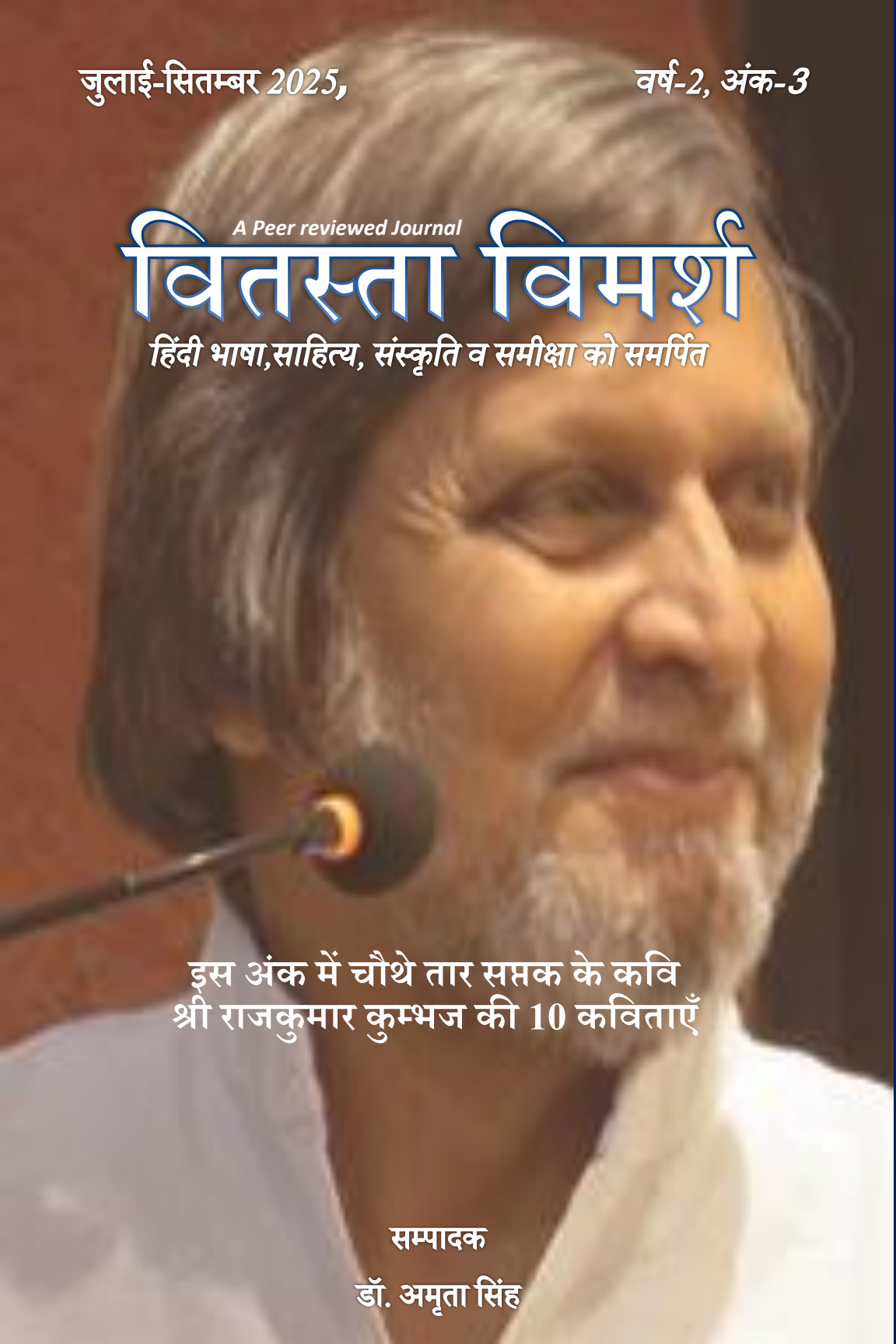

इस अंक में चौथे तार सप्तक के कवि
श्री राजकुमार कुम्भज की 10 कविताएँ

सम्पादक
डॉ. अमृता सिंह

वितस्ता विमर्श

हिंदी भाषा, साहित्य, संस्कृति व समीक्षा को समर्पित

संरक्षक
डॉ. सतीश विमल

सम्पादक
डॉ. अमृता सिंह

वितस्ता विमर्श एक अव्यवसायिक त्रैमासिक ई-पत्रिका है।
वर्ष में ४ अंक प्रकाशित होंगे
१-१५ अप्रैल तक जनवरी-मार्च अंक
१-१५ जुलाई तक अप्रैल-जून अंक
१-१५ अक्टूबर तक जुलाई-सितम्बर अंक
१-१५ जनवरी तक अक्टूबर-दिसम्बर अंक
प्रत्येक अंक के लिए रचनाएँ भेजने, दिशा-निर्देश तथा अन्य जानकारी www.vitasta-vimarsh.com पर

© सर्वाधिकार सुरक्षित

वितस्ता विमर्श अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर से प्रकाशित होने वाली प्रथम त्रैमासिक ई-पत्रिका है। अतः इस पत्रिका के साथ जुड़ें और हमें सहयोग दें। vitastavimarsh1@gmail.com पर अपनी रचनाएँ प्रेषित करें और अपने सुझावों से पत्रिका को समृद्ध करें।

वितस्ता विमर्श पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं व आलेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों, लेखकों का है। रचनाओं व आलेखों में व्यक्त विचारों से संपादक व संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद में न्यायक्षेत्र केवल श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर होगा।

सम्पादक

डॉ. अमृता सिंह

श्रीनगर, कश्मीर

email: amrita.ku26@gmail.com

Cell: 9622911777

सह सम्पादक

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

श्रीनगर, कश्मीर

email: mudasirhindi@gmail.com

Cell: 9682593408

परामर्श मंडल

प्रो. ज़ोहरा अफ़ज़ल

प्रो. ज़ाहिदा जबीन

प्रो. कहकशां एहसान साद

श्री अनिल शर्मा जोशी

प्रो. संजय एल. मादार

प्रो. मुहम्मद मेराज अहमद

प्रो. विनोद कुमार तनेजा

प्रो. रुबी ज़ुत्शी

प्रो. मुहम्मद आशिक अली

प्रो. जय कौशल

प्रो. करण सिंह ऊटवाल

प्रो. महबूब सुबानी

सम्पादक मण्डल

डॉ. शगुफ्ता नियाज़

डॉ. नाइरा कुरैशी

डॉ. नरेश कुमार सिहाग

श्री विशाल कुमार

डॉ. सुशीला आर्या

डॉ. सब्ज़ार अहमद भट्ट

डॉ. रेखा सोनी

इस अंक में

सम्पादकीय-

वैचारिक खंड

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का क्रांतिकारी अध्याय: काकोरी ट्रेन एक्शन
-गौरीशंकर वैश्य विनम्र **08-12**

रमेश चंद्र शाह के उपन्यासों में समाज: विविध पक्ष -शेक रुकसाना **13-23**

इतिहास/विरासत खंड

भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान परम्परा -डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता **24-34**

विमर्श खंड **26-61**

प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण जीवन (रचना मनोभाषिकता के संदर्भ में)
-दीपेन्द्र कुमार, प्रो. गंगाधर वानोडे, प्रो. टी. कमलाबती देवी **35-43**

काव्य खंड **62-65**

राजकुमार कुम्भज की कविताएँ **44-59**

नरेश कुमार खजूरिया की कविताएँ **50-55**

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल' की कविताएँ **56-71**

बौद्धिक विविधता और सहिष्णुता का नाम है शारदा पीठ

शारदा पीठ भारत के प्राचीनतम और अत्यंत प्रतिष्ठित ज्ञान-केंद्रों में से एक है। इसे भारतीय संस्कृति, शिक्षा और आध्यात्मिकता का उज्ज्वल प्रतीक माना जाता है। शारदा पीठ का नाम माँ सरस्वती के एक रूप देवी शारदा के नाम पर पड़ा है। प्राचीन काल में यह स्थान विद्या, कला और ज्ञान का महाकेंद्र रहा। जैसे दक्षिण भारत में कांची का महत्व था, वैसे ही उत्तर भारत के लिए शारदा पीठ विद्वानों का प्रमुख तीर्थ था। कहा जाता है कि यहाँ स्थापित शारदा मठ में अनेक विद्वान आते, शिक्षा प्राप्त करते और ग्रंथ-रचना करते थे। यह वह स्थान था जहाँ शब्द, शास्त्र और चिंतन की धारा प्रवाहित होती थी।

कश्मीर का प्राचीन इतिहास बताता है कि शारदा पीठ केवल एक मंदिर नहीं था, बल्कि शिक्षा का महान विश्वविद्यालय था। यहाँ शारदा लिपि का विकास हुआ, जो कश्मीर और हिमालयी क्षेत्रों में लंबे समय तक ज्ञान-वितरण का माध्यम बनी रही। कई महान पंडितों और आचार्यों ने इसी केंद्र में बैठकर वेद, वेदांत, मीमांसा, न्याय, काव्य और व्याकरण पर शोध कार्य किए। इसीलिए इसे "उत्तर का नालंदा" भी कहा जाता है। शारदा पीठ का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह धार्मिक सद्भाव और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक रहा है। यहाँ केवल हिंदू ही नहीं, बल्कि विभिन्न पंथों और दर्शनों के विद्वान खुलकर चर्चा करते थे। यह स्थान भारत की बौद्धिक विविधता और सहिष्णुता का प्रतिनिधित्व करता था। जनश्रुतियों के अनुसार, यहाँ आने वाले विद्वानों की परीक्षा भी होती थी, और जो विद्वान उसमें सफल होते, उन्हें अत्यंत सम्मान प्राप्त होता था।

आज शारदा पीठ भले ही अपने प्राचीन वैभव से दूर है, लेकिन भारतीयों के हृदय में इसकी आस्था आज भी उतनी ही गहरी है। यह स्थान

भारतीय ज्ञान-परंपरा के गौरवशाली इतिहास की याद दिलाता है और हमें यह समझाता है कि शिक्षा, संस्कृति और आध्यात्मिकता हमारी सभ्यता के मूल आधार हैं। शारदा पीठ केवल एक स्मारक नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-धारा का अक्षय स्रोत है, जिसका महत्व आने वाली पीढ़ियों को भी सदैव प्रेरित करता रहेगा। शारदा पीठ हमारे गौरव, हमारी संस्कृति और हमारी विद्या–परंपरा का अमूल्य धरोहर है। आवश्यकता है कि इसके ऐतिहासिक महत्व को समझते हुए इसे वैश्विक विरासत के रूप में संरक्षण और सम्मान दिया जाए ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस ज्ञान-धाम से प्रेरणा ले सकें।

मैं आशा करती हूँ कि जुलाई-सितम्बर २०२५ का यह अंक आपके मन-मानस में कुछ नए विचार, कुछ नए अनुभव और कुछ नया उत्साह लेकर जाएगा।

सम्पादक

डॉ. अमृता सिंह

श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का क्रांतिकारी अध्याय: काकोरी ट्रेन एक्शन

-गौरीशंकर वैश्य विनम्र

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की गाथा केवल गांधीजी के अहिंसक आंदोलन तक सीमित नहीं रही, अपितु इस संघर्ष में अनेक क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की आहुति देकर स्वतंत्रता की मशाल को प्रज्वलित किया। इन्हीं क्रांतिकारी प्रयासों में काकोरी कांड-1925 (परिवर्तित नाम काकोरी ट्रेन एक्शन) भारत के स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलनों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना बनकर उभरा, जिसने न केवल अंग्रेजी शासन को हिला दिया, अपितु भारतीय युवाओं को क्रांति की राह पर प्रेरित किया। यह कांड केवल एक लूट की घटना नहीं थी, अपितु इसके पीछे थी स्वाधीनता की स्पष्ट योजना, साहसिक संगठन और एक जागरूक राजनीतिक उद्देश्य।इस घटना से लखनऊ से लगभग 23 किलोमीटर दूरी पर स्थित काकोरी रेलवे-स्टेशन पर अंग्रेजों के विरुद्ध एक बड़ी हिंसात्मक आंदोलन की नींव रखी गई। इस वर्ष 9 अगस्त, 2025 को काकोरी ट्रेन एक्शन की 101 वीं वर्षगांठ मनाई जा रही है।

आठ अगस्त 1952 को बनाई गई थी ट्रेन लूटने की रणनीति

हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी के युवा क्रांतिकारियों ने सात अगस्त 1925 को शाहजहांपुर में बैठक कर रणनीति तय की थी। आठ अगस्त 1925 को काकोरी में ट्रेन लूटने की रणनीति बनाई, लेकिन उस दिन वे 10 मिनट देर से पहुँचे और ट्रेन चली गई। उन्होंने अगले दिन 9 अगस्त को काकोरी ट्रेन एक्शन को पूरा किया।तय घटनाक्रम के अनुसार आठ डाउन पैसेंजर से रोजाना जाने वाले अँग्रेजों के खजाने (रुपये 4600)को लूट लिया गया। राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी ने सहारनपुर - लखनऊ पैसेंजर ट्रेन की चेन खींचकर रोक दिया। फिर रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में अशफाकउल्ला खां, चन्द्रशेखर आजाद सहित दस वीरसपूतों ने ट्रेन पर धावा बोला और सरकारी खजाने को लूट लिया। इस कार्यवाही के दौरान एक यात्री की अनजाने में गोली लगने से मृत्यु

हो गई, जो योजना का हिस्सा नहीं था। इस कारण ब्रिटिश सरकार ने 'आपराधिक डकैती 'करार देकर अत्यंत कठोर कार्रवाई की। घटना के तुरंत बाद ब्रिटिश सरकार ने देशभर में जांच और छापेमारी शुरू की। 26 सितंबर, 1925 को 40 संदिग्ध लोगों को पकड़ लिया।

काकोरी ट्रेन एक्शन ने अंग्रेजी शासन की चूलें हिला दीं। अंग्रेजों ने घटना करने वाले क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिए पूरी ताकत झोंक दी थी। केवल 4600 रुपये लूटने वाले इन क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करने में लगभग 10 लाख रुपये खर्च किए गए थे। क्रांतिकारियों पर सरकारी खजाना लूटने और हत्या का केस चलाया। लगभग 10 महीने मुकदमा चला। फिर क्रांतिकारियों को सजा सुनाई गई थी। क्रांतिकारियों को पकड़वाने के लिए पांच हजार रुपये के इनाम की घोषणा की गई थी। लेकिन कांड से उत्साहित जनता की क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति और अधिक हो गई थी। खुफिया विभाग के एक वरिष्ठ अंग्रेज अधिकारी आरए हार्टन को इस घटना की विवेचना का इंचार्ज बनाया गया। घटना के स्वरूप को देखकर हार्टन की समझ में आ गया था कि इस घटना को क्रांतिकारियों ने ही पूर्ण किया है।

तत्पश्चात क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी प्रारम्भ हुई और 18 क्रांतिकारियों के विरुद्ध काकोरी षड्यंत्र का मुकदमा चलाया गया था। इस मुकदमे के आगे बढ़ जाने के बाद अशफाकउल्ला खां दिल्ली से सन् 1926 में गिरफ्तार कर लिए गए तथा सबसे अंत में शचीन्द्र नाथ बख्शी सन् 1927 में भागलपुर में गिरफ्तार हो गए थे।

काकोरी षड्यंत्र के मुकदमे का फैसला 6 अप्रैल, 1927 को स्पेशल सेशन जज ए. हैमिल्टन ने दिया था, जिसमें तीन क्रांतिकारियों रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह तथा राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी को फांसी की सजा दी गई थी। तथा अन्य लोगों को विभिन्न अवधि की सजाएं दी गईं थीं।

दिनांक 6 अप्रैल, 1925 स्पेशल सेशन जज ए. हैमिल्टन, फैसला सुनाने के बाद, चुपचाप कोर्ट से निकलकर सीधे चारबाग स्टेशन पहुंचे तथा वहां से बंबई (मुंबई)

जाने वाली ट्रेन में बैठकर सीधे मुंबई गए और वहां से लंदन के लिए रवाना हो गए, क्योंकि उन्हें भय था कि उनके निर्णय से क्रांतिकारी कहीं उन्हें गोली का निशाना न बना दें।

रामप्रसाद बिस्मिल और रोशन सिंह को 19 दिसंबर, 1927 को फांसी दी गई, जबकि राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी को निर्धारित तिथि से दो दिन पूर्व 17 दिसंबर, 1927 को ही फांसी दे दी गई। इसका कारण यह था कि अंग्रेजों को गुप्त रूप से सूचना मिली कि राजेन्द्र लाहिड़ी बाहर रह रहे क्रांतिकारियों के साथ मिलकर जेल से भागने की तैयारी कर रहे हैं।

काकोरी षड्यंत्र के पूरक केस में अशफाकउल्ला खां को फांसी तथा शचीन्द्र नाथ बख्शी को आजीवन कारावास की सजा दी गई थी। अशफाकउल्ला खां को 19 दिसंबर. 1927 को फैजाबाद जेल में फांसी पर चढ़ा दिया गया था।

रिंक थियेटर (वर्तमान में लखनऊ जीपीओ) : काकोरी ट्रेन एक्शन के इतिहास का साक्षी

अंग्रेजों ने काकोरी ट्रेन एक्शन में गिरफ्तार राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी, अशफाकउल्ला खां, रामप्रसाद बिस्मिल, श्रीराम कृष्ण खत्री सहित कई क्रांतिकारियों का मुकदमा दिसंबर 1925 से अगस्त 1927 तक लखनऊ के रोशनुद्दौला कचहरी फिर बाद में रिंक थियेटर (वर्तमान लखनऊ जीपीओ के डिलीवरी हाल) में भी चला था।यहाँ इन क्रांतिकारी सेनानियों की तस्वीरें गैलरी में प्रदर्शित की गई हैं। ट्रेन एक्शन केस का ट्रायल का चित्र भी इसी के साथ दर्शाया गया है। इसके अलावा फिलेटली में स्वतंत्रता संग्राम वीथिका भी बनाई गई है। स्वतंत्रता संग्राम वीथिका में कई क्रांतिवीरों पर आधारित स्टांप हैं।

काकोरी ट्रेन एक्शन के नाम का स्मारक

जीपीओ के सामने स्मारक में काकोरी ट्रेन एक्शन के सभी क्रांतिकारियों के नाम अंकित हैं। काकोरी ट्रेन एक्शन में केवल 10 क्रांतिकारी ही वास्तविक रूप से

सम्मिलित हुए थे,जिनमें पं. रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी, चंद्रशेखर आजाद, शचीन्द्रनाथ बख्शी, अशफाकउल्ला खां, बनवारी लाल और मुकुन्दीलाल आदि प्रमुख थे, किन्तु पुलिस की ओर से उन सभी को भी इस प्रकरण में नामजद किया गया, (चंद्रशेखर आजाद, मुरारी शर्मा, केशव चक्रवर्ती, अशफाकउल्ला खां व शचीन्द्र नाथ बख्शी को छोड़कर) ,जो उस समय तक पुलिस के हाथ नहीं आए।

काकोरी शहीद स्मारक

ऐतिहासिक घटना काकोरी ट्रेन एक्शन के बलिदानियों की स्मृति में बाजनगर गांव में घटना स्थल के पास स्मारक का निर्माण कराया गया था। वर्ष 1999 में तत्कालीन मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश कल्याण सिंह ने स्मारक का लोकार्पण किया था। स्मारक में शहीद मंदिर बना है। इसमें रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खां, राजेन्द्र लाहिड़ी, चंद्रशेखर आजाद, रोशन सिंह की प्रतिमाएं लगी हैं। 19 दिसंबर को इन सभी क्रांतिकारियों का बलिदान दिवस मनाया जाता है। आज भी उस समय का रेलवे स्टेशन तथा पुलिस स्टेशन मौजूद है। इस स्मारक में पुस्तकालय भी है, जहाँ देशभक्ति और स्वतंत्रता के संघर्ष से जुड़ी पुस्तकें हैं। पर्यटन विभाग ने यहाँ ओपन थियेटर बनाया है, जिसमें समय-समय पर देशभक्ति फिल्में चलाई जाती हैं। यहाँ 9 अगस्त और 19 दिसंबर को विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

काकोरी कांड के कारण देश के युवाओं में यह भाव पनपा कि स्वाधीनता केवल याचना से नहीं, बल्कि बलिदान से मिलेगी। यह घटना एक प्रकार की वैचारिक क्रांति थी जिसमें राष्ट्र प्रथम और स्वयं का जीवन द्वितीय स्थान पर था।

पं. रामप्रसाद बिस्मिल के शब्द देशभक्ति की प्रेरणा प्रदान करते हैं- "मुझे अपने जीवन से अधिक देश की आज़ादी प्रिय है। यदि मेरा बलिदान आने वाली पीढ़ी को प्रेरित करे, तो मेरा जीवन सफल है।"

वीर बलिदानी अशफाकउल्ला खां ने कहा था- "हमारी लड़ाई किसी धर्म के लिए नहीं, देश की मुक्ति के लिए है।"

काकोरी कांड भारत के स्वतंत्रता संग्राम का वह क्रांतिकारी अध्याय है, जिसने भारतीय युवाओं को आत्मबलिदान, संगठन और राष्ट्रप्रेम का पाठ पढ़ाया। यह केवल एक "ट्रेन डकैती" नहीं थी, अपितु ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ एक संगठित विद्रोह था। रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, राजेन्द्र लाहिड़ी और ठाकुर रोशन सिंह के बलिदान ने स्वतंत्रता के मार्ग को आलोकित किया।

काकोरी कांड आज भी हमें याद दिलाता है कि राष्ट्र की स्वतंत्रता का मूल्य अत्यंत ऊँचा होता है, जिसे समर्पण और साहस से ही प्राप्त किया जा सकता है। काकोरी के शहीद हमारे राष्ट्रीय चरित्र के वे स्तंभ हैं, जिनकी स्मृति में आने वाली पीढ़ियाँ प्रेरणा प्राप्त करती रहेंगी।

महान क्रांतिवीरों के बलिदान को सुस्मरण करते हुए कोटिशः नमन।

-गौरीशंकर वैश्य विनम्र
117 आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ 226022
दूरभाष 09956087585

रमेश चंद्र शाह के उपन्यासों में समाज: विविध पक्ष

शेक रुकसाना

सारांश

प्रोफेसर रमेश चंद्र शाह की लेखनी से कोई भी विधा अनछुई नहीं है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध और आलोचना में अपने भावों और विचारों को सार्थक रूप दिया है। शाह ने अपने उपन्यास में आर्थिक समस्या के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याएं और उससे जूझ रहे एक परिवार की स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दलितों के संगर्ष,अन्याय और अत्याचार को भी दिखाया है। अधिकतर लोग जिविकोपर्जना के लिए अपने मूल क्षेत्रों से नगरों में बसने लगे हैं। नवीन जीवन शैली में प्रवेश के बाद भी अपनी मूल संस्कृति और परंपरा को भुलाना उनके लिए कठिन है। इसलिए पुनः अपनी जन्मभूमि को जाने के लिए तत्पर होते हैं। शाह के इपन्यास में इसका भी चित्रण देखा जा सकता है। इस तरह वे अपने उपन्यासों में समाज के यथार्थ पक्ष को दिखाने का प्रयास करते हैं। चाहे वह आर्थिक समस्या हो या फिर पारिवारिक विघटन की समस्या। उनके उपन्यासों में सहानुभूति का चित्रण प्रमुख रूप से देखा जा सकता है।

मूल शब्द :- आर्थिक समस्या, पश्चाताप, एकालाप, जन्मभूमि, जीविकोपार्जना, प्रेम, आकर्षण, संघर्ष, अपमान, अन्याय आदि।

भूमिका

बाल्यावस्था से ही साहित्य के प्रति आकर्षित शाह की रचनाओं में सौंदर्य अनुभूति एवं जीवन अनुभूति प्रमुख रूप से देखी जा सकती है। उन्होंने अपने रचना संसार को काफी विस्तृत रूप दिया है। उन्होंने गद्य की अपेक्षा काव्य कम लिखे हैं। फिर भी अपने को मूलतः कवि मानते हैं क्योंकि काव्य के प्रति उनकी असीम आस्था है। उनकी रचनाओं में भोगे हुए यथार्थ को विशेष रूप से देखा जा सकता है। घर में आर्थिक समस्या, दरिद्रता, बीमारियों के चलते उन्होंने साहित्य के प्रति अपना महत्वपूर्ण योगदान

निभाया है। उनके उपन्यासों में आर्थिक समस्या और बीमारियों का स्पष्ट रूप से चित्रण हुआ है। अपने पिता के माध्यम से ही वे साहित्य के करीब हुए हैं। और साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अध्ययन का उद्देश्य

जैसा कि साहित्य समाज का दर्पण है। चूंकि दर्पण की तरह ही समाज बहु आयामी है। समाज के इसी बहू आयाम को लेखक विधा का रूप देकर पठन योग्य बनाता है । शाह के उपन्यासों के माध्यम से समाज के विविध पक्षों को दिखाना ही इसका मुख्य उद्देश्य रहा है।

शोध पद्धति

शोध के अनेक प्रकार है। जैसे विवरणात्मक शोध, तुलनात्मक शोध, व्याख्यात्मक शोध और आलोचनात्मक शोध आदि। जिसमें से मैंने आलोचनात्मक शोध का सहारा लिया है। इस लेख को लिखने के लिए मेरे गुरु एवं निर्देशक प्रो. करन सिंह ऊटवाल का बहुत बड़ा योगदान रहा। साथ ही अन्य पुस्तकों से सामग्री संकलित की गई है।

मुख्य विषय

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य में प्रत्येक युग का समाज विद्यमान है। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक है। जिस तरह से दर्पण के अनेक प्रकार होते हैं। जैसे समतल दर्पण, वक्र दर्पण (अवतल और उत्तल दर्पण),हास्य या विकृत दर्पण। ठीक वैसे ही समाज के भी अनेक पक्ष देखे जाते हैं। समतल दर्पण में वस्तु हू-ब-हू देखी जा सकती है। इसका रूप साहित्य में देखें तो, साहित्य में समाज को ज्यों का त्यों दिखाया जाता है। अर्थात समाज के यथार्थ को वैसा ही दिखाना जैसा की वह है। जैसे प्रेमचंद के गोदान और बड़े भाई साहब, फणीश्वर नाथ रेणु के मैला आँचल तथा आत्म कथाओं में समाज का यथार्थ रूप देखा जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन में दलित समाज का हू-ब-हू चित्रण देखा जा सकता है। अवतल दर्पण में वस्तु का बड़ा रूप देखा जाता है। साहित्य में समाज की समस्याओं को गहराई से और विस्तार पूर्वक

चित्रण किया जाता है। जैसे भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिक जड़ों की पड़ताल की है। उत्तल दर्पण में वस्तु का छोटा या सीमित रूप देखा जाता है। साहित्य में समाज का व्यापक रूप दिखाना लेकिन सीमित रूप से। जैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने त्रिवेणी में जायसी, सूरदास और तुलसीदास के जीवन की झलक दिखाई है न की उनका सम्पूर्ण जीवन। हास्य या विकृत दर्पण में वस्तु को व्यंग्य के रूप में देखा जाता है। साहित्य जब समाज को अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है तो व्यंग का सहारा अपनाता है। जैसे हरिशंकर परसाई ने 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में भारतीय लोकतंत्र की विसंगति, असमानता एवं राजनीतिक संवेदनहीनता पर तीखा व्यंग्य किया है। श्री लाल शुक्ल ने भी 'राग दरबारी' उपन्यास में राजनीतिक शिक्षा व सामाजिक भ्रष्टाचार पर करारा व्यंग्य किया है। समाज की अनेक समस्याओं का चित्रण रमेश चंद्र शाह ने अपने उपन्यासों में किया है। जैसे-

आर्थिक समस्या

'गोबर गणेश' उपन्यास में आर्थिक समस्या के कारण उत्पन्न अनेक समस्याओं को देखा जा सकता है। यह उपन्यास आर्थिक अभाव से जूझ रहे एक परिवार की कथा है। जिसमें प्रेम में असफल युवक का चित्रण भी हुआ है। उपन्यास का मुख्य पात्र विनायक द्वारा स्कूल में की गई हरकतों पर मास्टर द्वारा गोबर गणेश नाम दिया जाता है। उसके करीबी दोस्त सोहन की पारिवारिक स्थिति भी उस जैसी ही है। लेकिन सोहन के पिता उसकी पूरी देखभाल करते हैं। जबकि विनायक की ओर उनके पिता का ध्यान तक नहीं जाता है। क्योंकि वह हमेशा संगीत और सत्संग में ही लीन रहते हैं। जिसके चलते उनका ध्यान कभी परिवार की ओर गया ही नहीं। उसकी माँ कहती है कि-"अपने बाबूजी की हालत देख ही रहा है कोई मतलब नहीं घर में क्या हो रहा है, कैसे चल रहा है? वह तो मथुर काका के कोई बाल-बच्चे नहीं है इसलिए निभ रहा है जैसे-तैसे। जब उनके अपने बच्चे हो जाएँगे तब तेरे को कौन पूछेगा? कौन पढ़ाएगा -लिखाएगा तेरे को"[1]। कुछ समय बाद मथुर काका इनका भार संभालना बंद

कर देते हैं। विनायक इंटर में फर्स्ट आता है और आगे की पढ़ाई के लिए इलाहाबाद जाता है। आर्थिक समस्या के कारण वह एक बी.ए की लड़की शांतम को ट्यूशन पढ़ाता है। इसी दौरान वे दोनों प्यार करते हैं। लेकिन शांतम के पिता को यह स्वीकार्य नहीं था। इसलिए उसे दूसरी जगह ले जाते हैं। विनायक के लाख प्रयत्न करने के बावजूद भी वह उसे हासिल नहीं कर पाता है। आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण उनका प्रेम असफल हो जाता है।

दलित और आदिवासी संगर्ष

'किस्सा गुलाम' उपन्यास में लेखक ने कुंदन के माध्यम से दलित संघर्ष, अन्याय, अपमान और तिरस्कार का चित्रण किया है। कुंदन बचपन से ही अपमान और अन्याय का पात्र बना रहा है। स्कूल में अपनी निम्न जाति के कारण हमेशा अपमान का शिकार होता रहा है। मैट्रिक में फर्स्ट डिवीजन की कल्पना करता है। लेकिन सेकंड डिवीजन मिलने पर मर्माहत हो जाता है। क्योंकि उसका यह विलाप डिवीजन के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक स्वीकृति और सम्मान के लिए था। इसके न मिलने पर उसे सारा जीवन अंधकारमय लगता है। वाद-विवाद प्रतियोगिता में भी वह अन्याय का शिकार होता है। उसका भाषण सबसे अच्छा होता है। वही फर्स्ट प्राइज के योग्य है,लेकिन उसे कंसोलेशन प्राइज दिया जाता है। क्योंकि-"शिड्यूल कास्ट लड़के को पहला पुरस्कार! ... भाग लेनेवालों में सभी तो ब्राह्मणों और ठाकुरों के बेटे थे-कस्बे के प्रतिष्ठित लोगों के लड़के। उन्हें छोड़कर भला कुन्दन को कौन पूछेगा? अनहोनी ही होती वह"[1]। व्यक्ति कितना भी योग्य क्यों न हो यदि जाति उच्च न हो तो वह अयोग्य ही कहलाता है। उसे प्रेम में भी असफलता ही मिलती है। क्योंकि-"भागीरथी एक ब्राह्मण कन्या!... और कुन्दन एक डूम लड़का....क्या मतलब ऐसे मेलजोल का!"[2]। अंत में उसे एक बात समझ आती है कि-"भागीरथी ने उसे शूद्र होने के कारण ही ठुकराया है। उसे विश्वास है कि उसका पिता भी अन्ततः अपने शूद्र होने के आगे लाचार है और वह लाख कोशिश कर ले, लाख परतें चढ़ा ले अपने ऊपर, वह कभी इस हीनभावना से न तो खुद उबरेगा,

न दूसरों को उबरने देगा"[3]। इस तरह प्रत्येक स्थान से अन्याय ,अपमान और तिरस्कार ने उसे समाज से ही विरक्त कर दिया है। नारायण लाल टम्टा (कुंदन के पिता) एक ऐसा अखबार निकालना चाहते हैं, जिससे जात-पात का खात्मा हो जाए। क्योंकि-"यहाँ से इस शहर से चार अलग-अलग जातियों के चार अलग-अलग अखबार निकलते हैं। मुझे यह बहुत बुरा लगता था कि अखबार तक गुलामी और फूट को ही बढ़वा दे रहे हैं"[4]। लेकिन उनके अखबार को सामाजिक अस्वीकृति नहीं मिलती है। लेखक ने इस उपन्यास में फुटकल रूप से ही सही आदिवासी संघर्ष को भी दिखाने का प्रयास किया है। प्रकृति पर आधारित आदिवासियों का जीवन उजड़ने लगा है। क्योंकि प्रगति के नाम पर बाहरी समाज वाले उनके मूल निवास स्थलों को जैसे जल, जंगल और जमीन को उजाड़ने लगे हैं। जंगलों को काटकर कंपनियों का निर्माण किया जाने लगा है। जिसके चलते आदिवासियों के समक्ष विस्थापन की समस्या उत्पन्न होने लगी है। और उनकी मूल संस्कृति भी लुप्त होने लगी है।

विस्थापन की समस्या

रमेश चंद्र शाह द्वारा रचित 'पुनर्वास' एक समस्या प्रधान उपन्यास है। इसकी मुख्य समस्या ही पुनर्वास है। जीविकोपार्जना के लिए व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्र से नगरों में बसने लगा है। अपने क्षेत्र से भले ही वह दूर हुआ हों लेकिन अपनी मूल संस्कृति, परंपरा से उतना ही जुड़ा हुआ है जितना कि वह पहले था। नवीन जीवन शैली में प्रवेश के बावजूद भी वह जन्मभूमि को भुला नहीं पाता है। अतः अवकाश प्राप्ति के पश्चात जन्म भूमि को पुनः वापस लौटने को व्याकुल होता है। किंतु समस्या तब उत्पन्न होती है जब काफी लंबे समय के बाद जन्म भूमि में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक रूप से परिवर्तन देखता है। कुछ ऐसी ही समस्या पुनर्वास उपन्यास के नायक प्रोफेसर दीनानाथ के साथ घटित होती है। वह अपनी जन्मभूमि वापस लौटने में इतना व्याकुल है कि समय से पहले ही अवकाश प्राप्त कर गाँव पहुँचता है। लेकिन वह घर की रसोई से लेकर समाज और प्रकृति में आए परिवर्तनों से दुखी है। प्रो.नाथ समय

से पहले रिटायरमेंट लेने की वजह बताते हैं कि "मैं अपनी किताबी जिंदगी से ऊब चला था। यह पढ़ना-पढ़ाना, शोध करना-करवाना, मुझे अचानक बहुत फालतू काम लगने लगा"[5]। जब व्यक्ति किसी चीज से ऊब जाता है तो चाहते हुए भी उसका मन उसमे नहीं लग पाता है। तभी वह उस से पिंड छुड़ाकर स्वयं को अन्यत्र व्यस्त करना चाहता है। लेकिन वह जिस जकड़न से छुटकारा पाने के लिए अहमदाबाद से आलमपुर आता है, बल्कि यहाँ और अधिक फंसता जाता है। वह पश्चाताप करता है कि "मुझे कबूल करना चाहिए कि मुझ से बहुत बड़ी भूल हुई। मुझे यहाँ नहीं आना था। घर तो घर ही होता है फिर चाहे वह हिमालय में ही क्यों न हो। क्या विचित्र विडम्बना है यह एक घर से भागना और दूसरे घर में घुस जाना !'..."[6]। मानव का स्वभाव ही ऐसा है कि वह जल्दबाजी में निर्णय तो ले लेता है, लेकिन अंत में अपने ही निर्णय पर पश्चाताप भी करने लगता है।

जीवन की विविध समस्याएं

'कमबख्त इस मोड़ पर' उपन्यास एक लंबा एकालाप है। व्यक्ति अपना लगभग जीवन जीने के बाद एक ऐसे मोड में प्रवेश करता है, जहाँ एक तरफ अपने अतीत और दूसरी तरफ वर्तमान तथा भविष्य के अंतर्द्वंद्व में जकड़ा रहता है। अपने अतीत से उसे पश्चताप है तो वहीं वर्तमान और भविष्य को लेकर वह डरा हुआ रहता है। इस उपन्यास का नायक श्रीमान जोशी है। इकसठ वर्षीय जोशी सुशिक्षित और मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित है। उसे बहुत जल्द ही गुस्सा आता है और जल्द ही वह शांत भी हो जाता है। वह दो पीढ़ियों के बीच दबा हुआ है। वह प्रत्येक स्थान पर अपने को अव्यवस्थित और बलपूर्वक ठूंसा हुआ पाता है। व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के क्रम में कब वह युवावस्था से गुजर जाता है, उसे पता ही नहीं चलता है। नायक पश्चाताप करता है कि- "मैं तो मानो सीधे एक ही झटके में अपने लड़कपन से इस बुढ़ापे में फेंक दिया गया हूँ। यह क्या हो गया? कैसे हो गया?... इत्यादि-इत्यादि"[7]। उसे बढ़ती उम्र से समस्या नहीं है, बल्कि बूढ़ा दिखने और किसी के द्वारा बूढ़ा कहने से

उसे चिढ़ आती है। नायक छोटे बेटे को पत्र में लिखता है कि "मोहन बाबू को तो जानते ही हो। वह जो नमिता आंटी तुम्हें इतनी पसंद हैं, बीवी है बेशक उनकी, मगर नंबर दो। नंबर एक असल बीवी उनके यहाँ से तीन सौ किलोमीटर दूर गाँव में उनकी जमींदारी संभाल रही है और उनके छह-छह वारिसों को भी"[8]। पत्नी के रहते हुए भी पुरुष बहार या तो दूसरा विवाह कर लेता है या फिर प्रेयसी को बनाए रखता है। इस उपन्यास का इकसठ वर्षीय पात्र अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर है। फिर भी उसमें युवा जीवन जीने की तड़प विद्यमान है। उसे बूढ़ा होने से नहीं बल्कि बूढ़ा दिखने से खीज है।

'विनायक'उपन्यास की कथा पूर्व उपन्यास 'गोबर गणेश' के नायक विनायक की ही उत्तर कथा है। इस उपन्यास का नायक ही विनायक है। विनायक मुंबई के कॉलेज में अंग्रेजी विभाग का प्राध्यापक है। उसने मालती से प्रेम विवाह किया है, और दो बेटों का पिता है। वह अपना अधिकतर समय विभाग में ही बिताता है। उसकी पत्नी वेश्याओं के पुनर्वास के लिए एक संस्था स्थापित करती है। वह भी अपना अधिकतर समय उसी में व्यतीत करती है। जबकि नायक को पत्नी के कार्य में रुचि नहीं रहती है। वह उसके कार्य को व्यर्थ मानता है। दोनों एक दूसरे से चिढ़ते रहते हैं। प्रेम विवाह करने के बावजूद भी दोनों के बीच प्रेम का अभाव देखा जा सकता है। पत्नी के कार्य से संतुष्ट न होने से ऐसा संभव होता है। प्रत्येक कार्य में दोनों की सहमति होना भी जरूरी होता है। वह अपने ही विभाग की सहकर्मी शकुंतला से बेहद आकर्षित है। जबकि वह विवाहित स्त्री है और एक बेटे की माँ है, जो विदेश में पढता है। लेकिन उसके पति से उसका तलाक हो गया है। साथ ही वह राउलैंड्स की शिष्या मार्गरिट से भी आकर्षित है। विदेश भ्रमण के दौरान दोनों की मुलाकात हुई थी। दोनों के बीच चिट्ठी पत्री चलती रहती है। एक दिन घर पर विनायक के नाम मार्गरिट की चिट्ठी आती है। जिसे उसकी पत्नी पढ़ती है, उसे बुरा लगता है और दोनों के बीच वार्तालाप न के बराबर हो जाता है। वे दोनों एक दूसरे से मौन रहते हैं। 'गोबर गणेश' उपन्यास में देखा गया है कि

विनायक युवावस्था में शांतम से आकर्षित था और 'विनायक' उपन्यास में वह उम्र के अंतिम पड़ाव में मार्गरिट और शकुंतला से आकर्षित है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कैसे वह अपनी उम्र के हर पड़ाव पर स्त्री से आकर्षित रहता आया है। पूर्व उपन्यास में उसके लिए शांतम के बगैर जीना असंभव था। इस उपन्यास में देखा जा सकता है कि वह एक साथ सभी को पाना चाहता है। शकुंतला उसे विदुषी स्त्री लगती है तो मार्गरिट के सामीप्य से उसे राहत मिलती है। और पत्नी मालती से विवाह पूर्व प्रेम पाना चाहता है। यह स्तिथि उसकी बचपन से ही रही है। अतः मानव अपने प्रेम की पुर्ती के लिए अन्य से आकर्षित होता आया है।

'असबाब-ए-वीरानी' उपन्यास अनामगिरि नामक व्यक्ति की डायरी और पत्र को आधार बनाकर लिखा गया है। संपूर्ण उपन्यास प्रेम की सामाजिक स्वीकृति और उसके प्रभाव को चित्रित करता है। अनामगिरि वन विभाग का अधिकारी है। उसका शिष्य नितीश भी उसी विभाग का अफसर है। नीतीश अपनी पत्नी के प्रति संरक्षी है। यहाँ तक के माँ का लाडला पुत्र होने के बावजूद भी माँ का अधिकार पत्नी पर चलने नहीं देता है। उसे पूरी छूट दे रखी थी। लेकिन अधिक छूट देने से भी समस्या उत्पन्न होती है। वह अवकाश प्राप्ति के समय नितीश की पत्नी अनु से प्रेम संबंध स्थापित करता है। वह भी उससे प्रेम करती है। दाम्पत्य जीवन से आबद्ध रहने के बावजूद दोनों प्रेम रूपी जाल से जकडे हुए हैं। इन दोनों के बीच प्रेम संबंध स्थापित करने का कसूरवार नितीश ही है। क्योंकि उसने कई बार पत्नी से कहा था कि-"मैं तुम लोगों को प्यार करते देखना चाहता हूँ। देखूँ तो सही, तुम लोग कैसे प्यार करते हो"[9]। प्रारंभ में तो वह इस बात को हंसकर टाल देती थी कि यह वाहियात बात है। लेकिन धीरे-धीरे वह उससे प्रेम करने लगती है। अनामगिरि ऐसे डाकबंगले में रहता है जहाँ बिजली तक नहीं रहती है। अक्सर वह वन भ्रमण के लिए नीतीश को बुलाता है तो वह अपनी पत्नी को उसके साथ भेज देता था। वन भ्रमण के दौरान दोनों एक दूसरे के काफी समीप हो जाते हैं। देखा जाए तो अनु ही प्रेम का आरंभ करती है। अनामगिरि कहता है कि "मैंने ही

उसे खींच लिया अपनी बाँहों में ? कि वही खुद मुझसे आ चिपटी ?... मुझे तो ऐसा ही याद पड़ता है कि उसी ने वह सब किया था... मैं तो अपनी सुध-बुध ही गँवा बैठा था..."[10]। दोनों के बीच फोन, पत्र आदि का सिलसिला चलता रहा। जिससे नीतीश चिढ़ने लगता है। कहीं न कहीं उसे अब जाकर अपने किए पर पश्चाताप होता है। पत्नी को उसका कष्ट देखा नहीं जा रहा था। साथ ही साथ वह पति को दोषी भी ठहराती है। वह कहती है कि "आखिर मेरे आपके बीच जो कुछ भी है, उसके लिए वह खुद भी तो उतना ही जिम्मेदार है जितना मैं या आप। बल्कि हमसे कहीं ज्यादा तो वही जिम्मेदार है। अगर वह नहीं चाहता... और खुद आगे बढ़कर मुझे आपका साथ पाने को नहीं उकसाता तो क्या ऐसा होना संभव था? ... सच्चाई तो यही है ना, जो अब आँख सामने दीख रही है... कि वह बेहद कष्ट में है और पछता भी रहा है मन ही मन, की यह वह क्या कर बैठा और क्यों कर बैठा?"[11] वह पति से भी प्रेम करती है और प्रेमी से भी। वह अपने जीवन में दोनों को समानता से चाहती है। उसे डर है कहीं उसका पति उससे नफरत न करने लगे। अनामगिरि से प्रेम को पति की देन मानती है, और साथ ही साथ उसे दोषी भी। इस समाज में एक विवाहित स्त्री अन्य पुरुष से संपर्क में आना तो दूर वह विचार भी नहीं कर सकती है। अगर ऐसा हुआ तो दांपत्य जीवन बिखरने के कगार पर आता है। तलाक तक हो सकता है। लेकिन शाह ने इस उपन्यास में ऐसा होने नहीं दिया है। उन्होंने तीनों पात्रों द्वारा अपने किए पर पश्चाताप जरूर करवाया है, और यथा स्थान पर भी पहुँचाया है।

प्रासंगिकता

साहित्य में समाज के प्रत्येक युग एवं घटना का चित्रण होता है। साहित्य समाज को उसके यथार्थ से परिचित करवाता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। आधुनिकता के चलते लोग टेक्नोलॉजी को अधिक महत्व और साहित्य के पठन या पाठन को कमतर समझने लगे हैं। लेकिन वास्तविकता तो यही है कि साहित्य के बिना तो वह अधूरा है। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य से जुड़ा

रहता है। अपने दैनिक जीवन में उन्हें फिल्में देखना या गाने सुनना बहुत अच्छा लगता है। यहाँ फ़िल्में और गाने लोकप्रिय साहित्य की श्रेणी में आते हैं। लेकिन इसी साहित्य को आज कम आंका जा रहा है। आज के बड़े-बड़े सॉफ्टवेयर इंजीनियर भी साहित्य के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। क्योंकि उन्हें अब जाकर साहित्य का महत्व पता चल रहा है कि साहित्य में ही शारीरिक और मानसिक शांति है। फिर भी लोग साहित्य के महत्व को खुलेआम स्वीकारने से कतराते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक अनेक विधाओं के माध्यम से समाज के यथार्थ रूप को समाज से ही परिचित करवाने का प्रयास करता है।

निष्कर्ष

इस तरह लेखक ने अपने उपन्यासों में आर्थिक समस्या,प्रेम में असफल युवक,एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से आकर्षण, बुढ़ापे की समस्या, दलित संघर्ष व पीड़ा,आदिवासी संघर्ष,विवाहित स्त्री का अन्य पुरुष से आकर्षण आदि का चित्रण किया है। दर्पण की तरह ही समाज बहुआयामी है। जिसका चित्रण साहित्य में होता है। जिसमें कभी समाज के सत्य से परिचित कराया जाता है तो कभी व्यंग्य का प्रयोग किया जाता है, और कभी हास्यास्पद विडंबना से पाठक समाज को लोटपोट किया जाता है। जो भी हो साहित्य के माध्यम से मानव समाज अपनी कुंठा को दूर कर शांत रह सकता है।

सन्दर्भ-

1. गोबर गणेश,रमेश चन्द्र शाह,1977,पृ.91
2. किस्सा गुलाम,रमेश चन्द्र शाह,1987,पृ.155
3. वही,पृ.151
4. वही,पृ.189
5. वही,पृ.137
6. पुनर्वास,रमेश चन्द्र शाह,1995,पृ.98-99
7. वही, पृ.100
8. कम्बख्त इस मोड़ पर, रमेश चन्द्र शाह, 2007,पृ.15
9. वही,पृ.63
10. असबाब-ए-वीरानी, रमेश चन्द्र शाह, 2011,पृ.79
11. वही, पृ.54
12. वही, पृ.82

शेक रुकसाना
शोधार्थी- पी.एच.डी.
मौलाना आजाद नेशनल
उर्दू युनिवर्सिटी, गच्चीबौली, हैदराबाद
मो.न.9652565272
Sanaruksana2368@gmail.com

भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान परम्परा

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता

सारांश- भारतीय लोग आज भी अपनी परंपरा और मूल्यों को बनाए हुए हैं। विभिन्न संस्कृति और परंपरा के लोगों के बीच की घनिष्ठता ने भारत देश को बनाया है। जिसमें मानव जीवन के लिए भाव, राग और ताल समाहित है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति वेद, तंत्र एवं योग की त्रिवेणी है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं। ऋग्वेद की शुरुआती ऋचाओं में कहा जाता है कि 'आ नो भ्रदाः क्रतवो यंतु विश्वतः' सात्विक साधु विचार हर दिशा से आने दो। स्वयं को किसी चीज से वंचित न करो। अच्छी बातों को ग्रहण करो, तभी भला होगा। प्रत्येक देश की अलग पहचान उसकी संस्कृति के कारण होती है। चूँकि प्रत्येक देश के नागरिकों का व्यवहार उनकी संस्कृति द्वारा निर्धारित मूल्यों के अनुरूप होता है, जो कि सम्पूर्ण राष्ट्र के व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते है। संसार में भारतीय संस्कृति को सबसे उच्च स्तर का होना स्वीकार किया गया है, जिसका मूलाधार यहाँ की संस्कृति के शाश्वत एवं चिरस्थायी मूल्य हैं। भारतीय संस्कृति मनुष्य और समाज के मध्य संबंध का एक सुव्यवस्थित आदर्श है, जिसमें परिवर्तनों को स्वीकार करने की अदम्य क्षमता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का निर्माण राजनैतिक, आर्थिक आधार की बजाए धार्मिक आधार पर हुआ है। इसी कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की प्रधानता रही है, जिसमें वृहत्तर अध्यात्म ज्ञान की ओर संकेत है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति कर्तव्यनिष्ठा के भाव से सदैव ओत-प्रोत रही है। इसका अभिप्राय है कि फल की अपेक्षा कर्तव्यभाव से कार्य करना, जिसमें त्याग, तपस्या और बलिदान का महत्व है। हमारी प्राचीन वर्ण-व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था का आधार कर्तव्य ही रहा है। भारतीय इतिहास का सूक्ष्म अवलोकन करने से निष्कर्ष प्रस्तुत होता है कि भारत का इतिहास आक्रमण और विजय-पतन तथा उत्थान व सुषुप्ति जागरण का अद्वितीय

इतिहास है। भारतीय संस्कृति सदैव से ही संचयशील और सहिष्णु बनी रही है। इसके मूल में भारतीय समाज की आध्यात्मिकता दृष्टिगोचर होती है, जिससे भारतीय संस्कृति विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति बनी हुई है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रतिदर्श आधुनिक भारतीय समाज में भी मिलता है। यद्यपि विज्ञान के अविष्कारों तथा पश्चिम के अंधानुकरण से यह संस्कृति भी अपना स्वरूप परिवर्तित कर रही है। तथापि हमारे प्रचलित संवैधानिक मूल्य-समानता, सामाजिक न्याय, भ्रातृत्वभाव, धर्मनिरपेक्षता इस संस्कृति की विशाल हृदयता की ही परिणति हैं, जिसमें विश्व मानवता का गहरा भाव जुड़ा हुआ है।

संकेत शब्द- भारतीय संस्कृति, परिप्रेक्ष्य, ज्ञान परम्परा।

भारतीय परंपरा के अनुसार हमारे चिंतन में कई धाराएं हैं, लेकिन पश्चिम ने केवल एक ही धारा को समझा और फैलाया है। विदेशी ताकतों ने हमेशा से ही हमारी ज्ञान परंपरा को दबाकर रखने की कोशिश की है। हमारे विज्ञान और सेवा भाव को हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश की गई है, जिसके कारण हमने अपनी समृद्ध ज्ञान परंपरा को बहुत हद तक खो दिया है। आज फिर से हमें अपनी ज्ञान परंपरा और सामाजिक व्यवस्था को समझने और अपने तरीके से परिभाषित करने की जरूरत है। अपनी ज्ञान परंपरा, सामाजिक व्यवस्था और जीवन शैली को बाजारवाद से बचाने की जरूरत है। हमें पश्चिमी सभ्यताओं और विदेशी ज्ञान-विज्ञान को दरकिनार कर अपनी परम्पराओं और मान्यताओं का पुनरूत्थान करते हुए भारतीयता में पूरी तरह रमना होगा। सभी विचारधाराओं के लोगों से संवाद करना होगा और उनको साथ लेकर चलना होगा। हमारी परंपरा विविधताओं का सम्मान करने की है और उनमें एकता स्थापित करने की है, जिसे आज अच्छी तरह से व्यवहार में उतारना होगा ताकि भारत पूरे विश्व में एक बड़ी ताकत के रूप में उभर सके। भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। इस ज्ञान परंपरा में आधुनिक विज्ञान प्रबंधन सहित सभी क्षेत्रों के लिए अद्भुत खजाना है। भारतीय दृष्टिकोण से ही ज्ञान परंपरा का अध्ययन कर हम एक बार फिर विश्वगुरु बन

सकते हैं। हमें अपनी मानसिकता को बदलकर अपने जीवन में भारतीयता को अपनाने की जरूरत है। पश्चिम के विकासवादी मॉडल को छोड़कर ही हम दुनिया में खुशहाली ला सकते हैं। हमने अब तक जो कुछ पढ़ा है जो भी हमें पढ़ाया गया है, ज्ञान संगम जैसे कार्यक्रमों में शामिल होकर लगता है कि वह एकतरफा है। हर विषय को पश्चिम के नजरिए से प्रस्तुत कर हमने प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का अपमान किया है। हम भारतीय अपनी परम्परा, संस्कृति, ज्ञान और यहाँ तक कि महान विभूतियो को तब तक खास तवज्जो नहीं देते जब तक विदेशों में उसे न स्वीकार किया जाए। यही कारण है कि आज यूरोपीय राष्ट्रों और अमेरिका में योग, आयुर्वेद, शाकाहार, प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, होम्योपैथी और सिद्धा जैसे उपचार लोकप्रियता पा रहे हैं जबकि हम उन्हें बिसरा चुके हैं। हमें अपनी जड़ी-बूटियों, नीम, हल्दी और गोमूत्र का ख्याल तब आता है जब अमेरिका उन्हें पेटेंट करवा लेता है। योग को हमने उपेक्षित करके छोड़ दिया पर जब वही 'योगा' बनकर आया तो हम उसके दीवाने बने बैठे हैं। पाश्चात्य संस्कृति में पले-बसे लोग भारत आकर संस्कार और मंत्रोच्चारण के बीच विवाह के बंधन में बंधना पसन्द कर रहे हैं और हमें अपने ही संस्कार दकियानूसी लगते हैं। हमारे देश में प्रत्येक राज्य की अपनी भाषा है। भाषाओं की विभिन्नता के समावेश के बावजूद भी अंग्रेजी को बोलचाल का माध्यम बनाया जाता है। मुझे समझ नहीं आता कि जितनी मेहनत हम लोग अंग्रेजी सीखने में करते हैं उतनी मेहनत करके हम अपने ही भारत देश की किसी और भाषा को सीखने में क्यों नहीं करते हैं? पाश्चात्य अथवा अंग्रेजी संस्कृति को दोष देने से पहले हमको अपने गिरेबान में झांककर देखना चाहिए कि वो खुद अपनी संस्कृति के प्रति कितना निष्ठावान है। सनसनीखेज पत्रकारिता के माध्यम से आज पत्र- पत्रिकाएं ऐसी सामाजिक विसंगतियों की घटनाओं की खबरों से भरी होती हैं जिसको पढ़कर हमारी युवाओं की उत्सुकता उसके बारे में और जानने की बढ़ जाती है। युवा गलत तरह से प्रसारित हो रहे विज्ञापनों से इतने प्रभावित हो रहे हैं कि उनका अनुकरण करने में जरा भी संकोच नहीं कर रहे हैं।

आज हम आपने आचरण से गांधीजी के आदर्शों को तिलांजलि दे रहे हैं पर अमेरिका में पिछले कुछ वर्षों में करीब पचास विश्वविद्यालयों और कॉलेजों ने गांधीवाद पर कोर्स आरम्भ किए हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, लेकिन ये परिवर्तन हमें पतन की ओर ले जाएगा। एक समय था जब हमारे युवाओं के आदर्श, सिद्धांत, विचार, चिंतन और व्यवहार सब कुछ भारतीय संस्कृति के रंग में रंगे हुए होते थे। वे स्वयं ही अपनी संस्कृति के संरक्षक थे, परंतु आज उपभोक्तावादी पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध से भ्रमित युवा वर्ग को भारतीय संस्कृति के अनुगमन में पिछड़ेपन का एहसास होने लगा है। जिस युवा पीढ़ी के ऊपर देश के भविष्य की जिम्मेदारी है, जिसकी ऊर्जा से रचनात्मक कार्य सृजन होना चाहिए, उसकी पसंद में नकारात्मक दृष्टिकोण हावी हो चुका है। संगीत हो या सौंदर्य, प्रेरणास्रोत की बात हो या राजनीति का क्षेत्र या फिर स्टेटस सिंबल की पहचान सभी क्षेत्रों में युवाओं की पाश्चात्य संस्कृति में ढली नकारात्मक सोच स्पष्ट होने लगी है। आज महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के साथ विद्यालयों में शिक्षा के लिए जा रहे युवा मन व विद्यार्थियों से जानकारी लें तो पता लगेगा कि हर दूसरे के कानों में तेज धुनों पर जो संगीत बज रहा है वो पॉप संगीत है। युवा वर्ग के लिए ऐसी धुन बजाना दुनिया के साथ चलने की निशानी बन गया है। युवा वर्ग के अनुसार जिंदगी में तेजी लानी हो या कुछ ठीक करना हो तो गो इन स्पीड एवं पॉप संगीत सुनना तेजी लाने में सहायक है। लोक संगीत के स्थान पर युवा पीढ़ी ने पॉप संगीत को स्थापित करने का फैसला कर लिया है। हमारे राष्ट्र में मूलभूत रूप से सांस्कृतिक एकता है। हमारी मूल संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम्' वाली संस्कृति है जिसका अस्तित्व सारे भारत में है। हमारे साहित्य में एकता है, एकरूपता नहीं, एकात्मता है। हम संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों के ऊपर उठ सकते हैं। हमारी भाषाओं में अधुनातन विज्ञान-प्रौद्योगिकी को अभिव्यक्त करने की शक्ति है। भारत में न केवल विश्व-शक्ति बनने की क्षमता है वरन विश्व को भोगवाद के राक्षस से बचाने की भी क्षमता है। अंग्रेजी राज्य में जो विश्वविद्यालय भारत में खुले, वे पाश्चात्य ज्ञान परंपरा

की नुमाइंदगी कर रहे थे। इस दौरान भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परंपरा को भारी धक्का लगा। राष्ट्र की जरूरतों, व्यावहारिकता और समाज से जुड़ाव जैसी बातों को हम भूल गए। हम सब अपने-अपने स्कूल के दिनों में पाइथोगोरस प्रमेय से परिचित होते रहे हैं, लेकिन यह जानना दिलचस्प होगा कि पाइथोगोरस से कई सौ साल पहले भारत में इसका प्रयोग किया जाने लगा था। भारत में जब ऋग्वेद की रचना होने लगी तो अलग-अलग यज्ञ के लिए यज्ञवेदी बनने की बात हुई। यह निश्चित किया गया कि किस यज्ञ के लिए किस क्षेत्रफल और आकार-प्रकार की यज्ञवेदी बनाई जाएगी। समाज की इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए गणित का उपयोग किया गया और रेखागणित (ज्योमेट्री) उत्पन्न हुई।

पाइथोगोरस जिस गणित को दुनिया के सामने लेकर आए, उससे कई सौ साल पहले बौधायन ने शुल्ब-सूत्र में इसकी विस्तार से चर्चा कर दी थी। आज भी भारत का हर राज-मिस्त्री लंबे धागे के साथ वजन लगाए रखता है और भवन निर्माण में उसका तरह-तरह से बखूबी इस्तेमाल करता है। वह शुल्ब-सूत्र की ही उपज है। इसी उपकरण की मदद से वैदिक काल में लोग विभिन्न आकार वाली यज्ञवेदी की रचना करते थे। दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. दिनेश सिंह बताते हैं कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परंपरा में केवल बौधायन ही नहीं रहे हैं, बल्कि कात्यायन भी हुए। ऐसे तमाम गणितज्ञ भारत में हुए हैं, जिन्होंने सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर गणित की रचना की। कुल 16 शुल्ब-सूत्र लिखे गए। निश्चित रूप से पाइथोगोरस का प्रमेय गणित का ऊंचा सिद्धांत है, लेकिन भारतीय समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर वैदिक काल में जिस गणित की रचना की गई थी, वह आज की वर्तमान पश्चिमी परिभाषा से अलग अद्भुत और उन्नत है। भारत का ज्ञान और विज्ञान यहां की सामाजिक जरूरतों की उपज रही है। हमारे यहां यही परंपरा रही है, लेकिन आज हम इसमें पिछड़ रहे हैं। हमारे पिछड़ने और उदासीन रहने के कारण तिब्बती आध्यात्मिक नेता दलाई लामा कहते हैं कि भारत प्राचीन ज्ञान की उपेक्षा कर

रहा है और पश्चिमी संस्कृति की तरफ बढ़ रहा है। उत्तर प्रदेश के वाराणसी में उन्होंने कहा था कि आधुनिक भारतीय प्राचीन विचारों की उपेक्षा कर रहे हैं। आधुनिक भारतीय बहुत पश्चिमी हैं। भारतीयों को भारत के प्राचीन ज्ञान पर अधिक ध्यान देना चाहिए। आधुनिक भारतीयों को अपने ज्ञान को नहीं भूलना चाहिए। संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है। संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घकाल तक अपनायी गई पद्धतियों का परिणाम होता है। भारत इस धरती पर एकमात्र देश है जो आधुनिक सुविधा, शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को जोड़ सकता है। हमें धार्मिक विश्वास को छूने के बिना शिक्षा, प्राचीन भारतीय ज्ञान के आंतरिक मूल्यों को शामिल करना चाहिए। आर्यभट्ट, चरक, कणाद, नागार्जुन, हर्षवर्धन, अगस्त्य, भारद्वाज ऋषि, शंकराचार्य, आचार्य अभिनव गुप्त, स्वामी विवेकानंद के साथ सैंकड़ों महापुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने ज्ञान से विश्व की ज्ञान परंपरा को समृद्ध किया है। हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति समूचे विश्व की संस्कृतियों में सर्वश्रेष्ठ और समृद्ध संस्कृति है। भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता का देश है। भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व शिष्टाचार, तहजीब, सभ्य संवाद, धार्मिक संस्कार, मान्यताएं और मूल्य आदि हैं। हालांकि आज के परिवेश में हर एक की जीवन शैली आधुनिक हो रही है। भारतीय लोग आज भी अपनी परंपरा और मूल्यों को बनाए हुए हैं। विभिन्न संस्कृति और परंपरा के लोगों के बीच की घनिष्ठता ने भारत को देश बनाया है जिसमें मानव जीवन के लिए भाव, राग और ताल समाहित है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति वेद, तंत्र एवं योग की त्रिवेणी है। विगत दिनों प्रख्यात चिंतक जे नंदकुमार जी ने प्राध्यापकों के कार्यक्रम में बताया था कि 'हजारों साल पहले वेदों की रचना हुई। ऐसे सैकड़ों उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं। ऋग्वेद की शुरुआती ऋचाओं में कहा जाता है कि आ नो भ्रदाः क्रतवो यंतु विश्वतः 'सात्विक साधु विचार हर दिशा से आने दो। स्वयं को किसी चीज

से वंचित न करो। अच्छी बातों को ग्रहण करो, तभी भला होगा।' इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद शिष्यों को बताते हैं कि "यदि कोई अपने ही धर्म तथा संस्कृति का विशेष रूप से विद्यमानता का स्वप्न देखता है, तो मुझे उस व्यक्ति के प्रति दिल से सहानुभूति है और यह कहना चाहता हूँ कि बहुत जल्द प्रत्येक धर्म एवं संस्कृति के बैनर पर बिना संकोच सहायता करो, संघर्ष नहीं, समावेशन करो विध्वंस नहीं, मेल-मिलाप तथा शांति रखो।"

भारत अपने भाव, राग और ताल से स्पंदन उत्पन्न कर संपूर्ण विश्व को मानवता, भाईचारा और संवेदना का पारिवारिक संदेश देना चाहता है, अपनी जीवंत अमूर्त विरासत जो इसकी वैश्विक सभ्यता की विरासत है। इस विरासत से विभिन्न राष्ट्रों, समाजों तथा संस्कृतियों के बीच संस्कृति एवं सभ्यता का एक संवाद बनाने की प्रक्रिया आरंभ होती है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान परंपरा को स्थापित करने के प्रयास स्वाधीनता मिलने के साथ ही किए जाने चाहिए थे, लेकिन औपनिवेशक मानसिकता के कारण हमने अपने गौरवशाली इतिहास के पन्ने कभी पलटकर देखने की कोशिश ही नहीं की। हमें यह समझना चाहिए कि जिस समाज ने मुझे एक पहचान दी है, सब कुछ दिया है, उसके लिए मुझे भी कुछ करना है। सूचना के स्तर पर ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा का अंतिम लक्ष्य नहीं होता बल्कि समझ, विचार एवं बुद्धि से संजोए हुए ज्ञान की प्राप्ति करना ही मानवीय पांडित्य की वास्तविक प्राप्ति तथा जीवन बोध का मूल बिंदु कहा जा सकता है। पश्चिमी ज्ञान परिपाटियों का अंधाधुंध अनुकरण कभी लाभदायक नहीं हो सकता। पश्चिमी और भारतीय ज्ञान परंपरा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए हम पाते हैं कि पश्चिमी संस्कृति के भौतिकतावाद ने उन्नति तो बहुत की है लेकिन यह उन्नति मानसिक खुशहाली को साकार करने से वंचित रह जाती है।

स्वामी विवेकानंद की अनन्य शिष्या निवेदिता ने एक राष्ट्र के रूप में भारत के आंतरिक मूल्यों एवं भारतीयता के महान गुणों की खोज की है। उनकी पुस्तक 'द वेब ऑफ इंडियन लाइफ' निबंधों, लेखों, पत्रों एवं 1899-1901 के बीच एवं 1908 में

विदेशों में दिए गए उनके व्याख्यानों का एक संकलन है। सभी भारत के बारे में उनके ज्ञान की गहराई के प्रमाण हैं। भारतीय मूल्यों एवं परम्पराओं की महान समर्थक निवेदिता ने 'वास्तविक शिक्षा- राष्ट्रीय शिक्षा' के ध्येय को आगे बढ़ाया और उनकी आकांक्षा थी कि भारतीयों को 'भारत वर्ष के पुत्रों एवं पुत्रियों' के रूप में न कि 'यूरोप के भद्दे रूपों' में रूपांतरित किया जाए। वे चाहती थीं कि भारतीय महिलाएं कभी भी पश्चिमी ज्ञान और सामाजिक आक्रामकता के मोह में न फंसे और 'अपने वर्षों पुराने लालित्य एवं मधुरता, विनम्रता और धर्मनिष्ठा' का परित्याग न करें। उनका विश्वास था कि भारत के लोगों को भारतीय समस्या के समाधान के लिए एक 'भारतीय मस्तिष्क' के रूप में शिक्षा प्रदान की जाए। क्या हम ऐसा नहीं सोच सकते। हम उदीयमान भारत के ऊर्जावान युवा हैं, सोचने के साथ करने का हौसला कर ले तो कुछ भी असंभव नहीं हो सकता।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान की यह सनातन परंपरा अनादिकाल से है। वह तक्षशिला हो, नालंदा हो या विक्रमशिला विश्वविद्यालय सभी ज्ञान केंद्रों में यह परंपरा जड़ी रही है, इसलिए वैदिक काल से ही भारत की ज्ञान परंपरा उच्च स्तरीय रही है। शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोण को विकसित करने की जरूरत है। शिक्षा में भारतीय पुरातन ज्ञान परंपरा व संस्कृति के समावेश के नजरिये से यह संगम मात्र विकल्प नहीं है, बल्कि इस दिशा में सच्चा प्रयास है। भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा कला संस्कृति, दर्शन, समाज शास्त्र, विज्ञान व प्रबंधन समेत विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक दृष्टिकोण देती है। हमें इस दृष्टिकोण को शिक्षा के क्षेत्र में अपनाकर राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया को और मजबूत बनाना होगा। मौजूदा शिक्षण पद्धति में पश्चिम पक्षीय झुकाव ज्यादा है। ऐसे में शिक्षण पद्धति में भारतीय दृष्टिकोण के विकास के लिए गैर सरकारी व स्वायत्त प्रयासों को बढ़ावा देना, बदलते वैश्विक परिवेश में समय की जरूरत बन चुकी है। मैं समझता हूँ कि भारत के ऊपर जैसे-जैसे पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ता गया, वैसे-वैसे इसकी सनातनी ज्ञान-विज्ञान की परंपरा छिन्न-भिन्न होती जा रही है। हालांकि, नालंदा और

विक्रमशिला विश्वविद्यालय के पतन के बाद से ही इसकी शुरुआत हो गई थी और विद्या का स्तर नीचे आने लगा था। इसका मतलब यह नहीं कि हम वर्तमान विश्वविद्यालयीन शिक्षा परंपरा को पूरी तरह खारिज कर दें, क्योंकि विकल्पहीनता के दौर में इन विश्वविद्यालयों ने एक विकल्प दिया था। इन्हीं शिक्षा संस्थाओं से कई प्रतिभाएँ निकलीं, लेकिन आजादी के बाद हम जिस रास्ते पर चले, उससे भारतीय ज्ञान परंपरा का अधिक नुकसान हुआ है। आज भारतीय ज्ञान को स्थापित करने की नहीं बल्कि इस ज्ञान के व्यापक भंडार को खोजने की जरूरत है। प्राचीन ग्रंथों में छिपे इस ज्ञान के खजाने को खोजकर, उसे सँवारकर मानव कल्याण के लिए उपयोग में लाने की आवश्यकता है।

आज भारत के शैक्षणिक संस्थाओं को इस कार्य के लिए आगे आना होगा और समर्पित भाव से ऐसी परियोजनाओं में जुटना होगा ताकि कोई बाहरी संस्था या इंसान इस भण्डार की खोजकर उसको एक विकृत रूप में दुनिया के सामने पेश न करे। यहां का ज्ञान-विज्ञान युगों से प्रकृति के अनुकूल रहा है और इसी कारण भारत की जीवनशैली भी औरों से हमेशा श्रेष्ठ रही है। आज यही भारत अपनी इसी विशिष्टता को भूलकर आधुनिक दुनिया के पथ पर चलने लगा है। भारतीय ज्ञान, संस्कृति और परंपराओं में ही वह सामर्थ्य है, जिससे भारत अकेले नहीं बल्कि पूरे विश्व को शांति पथ पर ला सकता है। भारत को अपने मूल से जुड़े रहने की जरूरत है। भारत अपने ज्ञान को पुनर्जीवित कर दुनिया को बेहतर दिशा की ओर ले जाने में अपना योगदान दे सकता है। भारतीय ज्ञान परंपराएं मनुष्य की आंतरिक शांति और मन की भावनाओं को नियंत्रण में रख सकती है। आज हमारे सामने कई समस्याएं हैं जिनका समाधान भारत के प्राचीन ज्ञान और विज्ञान में हैं। देश की सरहद से ऊपर उठकर हमें मानवता के हित में कार्य करना होगा। भारतीय ज्ञान-विज्ञान की यह सनातन परंपरा अनादिकाल से है। वह तक्षशिला हो, नालंदा हो या विक्रमशिला विश्वविद्यालय सभी ज्ञान केंद्रों में यह

परंपरा जड़ी रही है, इसलिए वैदिक काल से ही भारत की ज्ञान परंपरा उच्च स्तरीय रही है।

बहरहाल, ज्ञान संगम के बहाने हमें एक नया ज्ञान दर्शन चाहिए जिसमें नीति नहीं ज्ञान केंद्र में हो। समाज का दर्शन और ज्ञान का दर्शन अलग-अलग है। ज्ञान का काम समाज के दर्शन को समाज कल्याण में मूर्त करना है जबकि समाज का दर्शन ज्ञान से जुड़ अपने आप को प्रकाशवान करना चाहता है। वैचारिक शून्य को भरे बिना, जनता का प्रशिक्षण किए बिना यह संभव नहीं है। हमें इसके लिए समाज निहित ज्ञान को ही शक्ति केंद्र बनाना होगा। लोगों की आकांक्षाएं, कामनाएं, आचार और व्यवहार मिलकर ही समाज बनाते हैं। इसलिए एक सामाजिक संस्कृति पैदा करना आज की बड़ी जरूरत है, जो कमजोर होते, टूटते समाज को शक्ति दे सके। राज्यशक्ति ने जिस तरह निरंतर ज्ञान शक्ति को कमजोर किया है। ज्ञान शक्ति की सामूहिकता को नष्ट किया है उसे जगाने की जरूरत है। इसमें कोई दो राय नहीं कि वेदों से लेकर आज के युग तक भारत की प्राणवायु धर्म है। वही हमारी चेतना का मूल है। यह धर्म ही हमारी सामाजिक संस्कृति का निर्माता है। आध्यात्मिक अनुभवों और अंतस की यात्रा के व्यापक अनुभवों वाला ऐसा कोई देश दुनिया में नहीं है। भारत का यह सत्व या मूल ही उसकी शक्ति है। जिन्हें धर्म का अनुभव नहीं वे विचारधाराएँ इसलिए भारत को संबोधित ही नहीं कर सकतीं। वे भारत के मन और अंतस को छू भी नहीं सकतीं। गांधी अगर भारत के मन को छू पाए तो इसी आध्यात्मिक अनुभव के नाते। ऐसे कठिन समय में जब हमारे महान अनुभवों, महान विचारों पर अवसाद की परतें जमी हैं, धूल की मोटी परत के बीच से उन्हें झाड़-पोंछकर निकालना और अपने ज्ञान पर भरोसा करते हुए, उनकी आंखों में झिलमिला रहे भारत के सपनों के साथ तालमेल बिठाना समय की जरूरत है। ज्ञान संगम जैसे आयोजन भारत के ज्ञान क्षितिज को उसका खोया हुआ आत्मविश्वास लौटा सकें तो सार्थकता सिद्ध होगी।

सन्दर्भ सूची

* बघेल, किरण (1976) "सामाजिक मानव शास्त्र", पुष्पराज प्रकाशन, रीवा, इलाहाबाद

* गुप्ता, एम.एल., शर्मा, डी.डी.(2007) "समाजशास्त्र", साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

* शर्मा, अंजलि, भार्गव, महेश (2016) "समावेशी शिक्षा एवं विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा निर्देशन एवं परामर्श", राखी प्रकाशन प्रा.लि., आगरा

* दुबे, मनीष कुमार, शर्मा, अंशु (2016) "शारीरिक शिक्षा स्वास्थ्य एवं योग", राखी प्रकाशन प्रा.लि. आगरा

* श्रीवास्तव, अंजना (2016) "महिला शिक्षा तथा कानून", राखी प्रकाशन प्रा.लि., आगरा

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
सहायक आचार्य, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
गंगापुर सिटी (राजस्थान) 322201
दूरभाष संख्या-9462607259
mail: dineshg.gupta397@gmail.com

प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण जीवन

(रचना मनोभाषिकता के संदर्भ में)

दीपेन्द्र कुमार
प्रो. गंगाधर वानोडे
प्रो. टी. कमलाबती देवी

सारांश-

कथाकार 'मुंशी प्रेमचंद' ग्रामीण परिवेश के जनमानस की मनोभाषिक भावनाओं को उकेरने वाले महान रचनाकार हैं। 'प्रेमचंद' ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समतावादी पक्षों एवं सामाजिक कुरीतियों को लेखन के माध्यम से समाज में उजागर किया है। अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने गरीबी, विषमता, असमानता, शोषण, अत्याचार आदि जैसी ग्राम्य जीवन को प्रभावित करने वाली कुरीतियों पर प्रहार करने वाली मनोभाषिकता को भी प्रस्तुत किया है। ग्रामीण जीवन में किसानों एवं मजदूरों की स्थिति एवं सामाजिकता का रूप उनकी कहानियों व पात्रों के द्वारा स्पष्ट दिखाई देता है। गरीब किसानों एवं मजदूरों की पीड़ा को समझने महान वाले कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने सामाजिक रूप में किसानों का पक्ष प्रस्तुत किया है। किसानों एवं ग्रामीण जीवन में स्पष्टता एवं आर्थिक कमजोर वर्ग के प्रति उनकी चिंता उनकी रचनाओं की मनोभाषिक प्रस्तुतियों से दिखाई देती है। प्रस्तुत आलेख के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में प्रस्तुत ग्रामीण जीवन की उनकी रचना मनोभाषिकता आधारित तथ्यों पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द- मुंशी प्रेमचंद, ग्रामीण, जीवन, ग्राम्य, किसान, मजदूर, गरीब, मनोभाषिकता, कहानियों, कुरीतियों, सामाजिकता।

कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में गरीब मजदूर किसानों के जीवन, मजदूरों की व्यथा, सामाजिक भेदभाव दंश, जातिगत असमानता, आर्थिक परिस्थिति की कठिनता, अंधविश्वास जैसी कुरीतियों एवं शोषण जैसे अमानवीय अत्याचार आदि की स्थिति के रचनात्मक तत्वों को विश्लेषित किया गया है। प्रसिद्ध कथाकार, कहानीकार एवं विचारक के रूप में प्रेमचंद ने अपने लेखन से किसानों के जीवन में गहराई से जाकर उनकी समस्याओं को उल्लेखित किया है, उनकी कहानियों के पात्रों की गरीबी, शोषण, अंधविश्वास और सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के कारकों को उन्होंने उजागर करते हुए प्रहार किया है। उनकी कहानियों में ग्राम्य जीवन की विरक्त एवं मनोभाषिक रचनात्मक सुगंध ने हिंदी साहित्य जगत की दुनिया को उनके नाम से सुगंधित किया है।

प्रेमचंद की रचनाओं में ग्रामीण जीवन, सामाजिक समस्याएं, और राष्ट्रीयता जैसे विषय प्रमुखता से उभरे हैं। उन्हें 'उपन्यास सम्राट' के रूप में जाना जाता है, और उनकी कहानियाँ आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। मुंशी प्रेमचंद ने कथासाहित्य में लगभग 300 कहानियाँ और 15 उपन्यास लिखे हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने कई नाटक, निबंध, लेख, और अनुवाद भी किये हैं। प्रेमचंद ने लगभग 15 उपन्यास लिखे हैं, जिनमें सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, और गोदान शामिल हैं। उनकी लगभग 300 कहानियाँ हैं, जो 'मानसरोवर' नामक आठ भागों में संकलित हैं, इसके साथ ही उन्होंने कई नाटक, निबंध, लेख, और अनुवाद भी किये हैं। उनकी रचनाएँ हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुईं और उनकी भाषा में उर्दू शब्दों का प्रयोग सहज मिलता है।

मुंशी प्रेमचंद की ग्रामीण जीवन के नैतिक मूल्यों की स्पष्टता व रचना मनोभाषिकता कहानियों में स्पष्ट दिखाई देती है। प्रेमचंद की कई रचनाएँ किसान जीवन केंद्र पर ही आधारित हैं, जिनमें 'गोदान' एक प्रसिद्ध कहानी है। किसान जीवन आधारित 'गोदान' उपन्यास की कहानी, कहानीकार सम्राट मुंशी प्रेमचंद के कथा

साहित्य जगत की वह अलभ्य मणि है, जिसने उन्हें रचना साहित्य संसार में सर्वोच्च शिखर पर प्रसिद्ध दिलाई है। इसके अलावा, 'पूस की रात', 'सवा सेर गेहूँ', 'शहडंज', 'ठाकुर का कुआँ', और 'कफन' जैसी कहानियाँ भी किसानों के जीवन और उनकी समस्याओं को दर्शाती हुई प्रसिद्ध कहानियां हैं। गोदान कहानी के साथ-साथ अन्य प्रसिद्ध रचनाओं के कारण उनको किसानों का पक्ष कहना भी गलत नहीं है। मुंशी प्रेमचंद मनोभाषिक कहानियों में ग्राम्य जीवन की दृष्टि का अध्ययन करें तो प्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण परिवेश की सामाजिक व व्यावहारिक कुरीतियों का सामना एक विकराल रूप में होता है।

मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में प्रायः ग्रामीण जीवन की जिन रचनाओं पर लेखन किया गया है। उन कहानियों व कथाओं मुख्यतः गरीब, किसान व मजदूर वर्ग पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। कथाकार प्रेमचंद भारतीय मर्म को समझने वाले एक रचनाकार थे, वे माटी से जुड़े हुई मनोभाषिक जीवन शैली के समर्थक थे, उनकी कहानियों में प्रायः जमीन से जुड़ी हकीकतों को रचनाओं के द्वारा प्रस्तुत किए जाने का प्रयास किया गया है। प्रेमचंद की कहानियों में किसानों, मजदूरों एवं अन्य शोषित वर्ग के गरीब एवं निर्धन व्यक्तियों के प्रति उनकी करुणात्मक मनोभाषिकता व सहानुभूति का भाव ग्रामीण जीवन परिवेश की कहानियों के माध्यम दृष्टिगत होता है।

प्रेमचंद के ग्राम्य जीवन केंद्रित निम्नलिखित कहानियों में उनकी रचना मनोभाषिकता को महसूस किया जा सकता हैः

गोदान-

यह एक प्रसिद्ध कहानी उपन्यास है। यह प्रेमचंद का उपन्यास के रूप में उपलब्धि प्राप्त कार्य है, जिसने उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि दिलाई, इस कारण इसे 'कृषक जीवन का महाकाव्य' भी कहा जाता है। इस महाकाव्य में, होरी नामक एक गरीब किसान के जीवन और उसकी गाय खरीदने की इच्छा के माध्यम से, प्रेमचंद ने किसानों के शोषण और गरीबी का मार्मिक चित्रण किया है। इस कथा में प्रेमचंद ने

गरीबी की असहाय स्थिति और पीड़ा को चित्रित किया है। प्रेमचंद के सशक्त व सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास 'गोदान' का होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में किसान का सहज-सरल आंतरिक जीवन-जैसा कि वह है, सामने रखने का प्रयास किया है। गोदान की शुरूआत किसान जीवन के लम्बे ऐतिहासिक आकलन पर आधारित है। "गोदान का नायक न केवल उपन्यास का नायक है बल्कि भारतीय किसान का प्रतिनिधि चरित्र भी। वह व्यवहार-कुशल है, ईश्वरवादी है, भाग्यवादी है, परम्पराओं और रूढ़ियों को मानने वाला है, भीरू है तथा जरूरत पड़ने पर छल और चोरी भी करने वाला है।"

इस उपन्यास में प्रेमचंद का प्रयास जमींदार और किसानों के आंतरिक, भावात्मक और वैचारिक जीवन का चित्रण करना रहा है। प्रसंगवश भले ही सम्पूर्ण समाज का चित्रण कर दिया गया है, परन्तु उपन्यास की धुरी किसान का दैनिक जीवन है। उपन्यास में युवा किसान के मन में कान्ति के बीज भी हैं। गोबर के व्यक्तित्व में वह कहीं-कहीं अंकुरित भी होता है। वह कहता है, "दादा का ही कलेजा है यह सब कुछ सहते हैं, मुझसे तो एक दिन न सहा जाए।" इससे जाहिर है कि युवा किसान कहीं न कहीं अपनी परिस्थितियों की असलियत समझ रहा है और उन्हें क्या करना चाहिए, यह भी समझ रहा है। गोदान में गांव के साथ शहर का कथानक रखकर प्रेमचंद अपने समय के समाज का सम्पूर्ण चित्र पेश करना चाहते हैं। उनका लक्ष्य भारतीय जीवन की विशाल धारा को चित्रित करना है। गांव की पुरानी व्यवस्थाएं छिन्न-भिन्न हो रही हैं, किसान और जमींदार दोनों टूट रहे हैं। होरी न अपने मरजाद की रक्षा कर पाता है, न जमीन की। उसका बेटा गोबर शहर की शरण लेता है। जमींदार टूटती हुई सामंतवादी व्यवस्था में एक ओर गांव का शोषण करता है और स्वयं शहर के महाजनों द्वारा शोषित होता है।

पूस की रात-यह कहानी हल्कू नामक एक गरीब किसान के बारे में है जो ठंड में अपने खेत की रखवाली करता है। कहानी में हल्कू उसका कुत्ता झबरा एवं उसकी

पत्नी को कथा के मुख्य पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'पूस की रात' कहानी के अंत में हलकू की फसल तबाह व चैपट होने पर भी उसके मन में एक सुकून था कि अब वह मजदूरी कर लेगा, किंतु रात में ठंड में नहीं मरना पड़ेगा। यहां उसके भीतर एक आशावादी प्रतिबिंब प्रदर्शित रहता है। क्योंकि वह एक भौतिक कष्ट से मुक्ति पाने का सुख महसूस कर रहा होता है। खेती में वह भाग्य भरोसे होता है किंतु अब वह उन अप्रत्यक्ष कष्टों का सामना नहीं करेगा जो अनायास प्रकट होते हैं। अर्थात इस कहानी में वह स्वयं के साथ होने वाले न्याय पर संतुष्ट नजर आता है। इस कहानी में, प्रेमचंद ने गरीबी और जलवायु परिस्थितियों के कारण किसानों के संघर्ष को दर्शाया है।

सवा सेर गेहूँ-यह कहानी साहूकारों द्वारा किसानों के शोषण और कर्ज के जाल में फंसाने की कहानी है। प्रेमचंद ने इस कहानी में दिखाया है कि कैसे एक गरीब किसान साहूकार के चंगुल में फंस जाता है और उसके शोषण का शिकार होता है। चाहकर भी गरीबी किसान को साहूकारों के ऋण से मुक्ति नहीं होनी देती और साहूकारों का शोषण निरंतर अपनी धुरी पर रहता है।

दो बैलों की कथा-नाम से इस कहानी का परिचय हो जाता है कि यह कहानी ग्रामीण जीवन से ताल्लुख रखती है। इस कहानी में हीरा और मोती नामक दो बैलों के माध्यम से प्रेम, दोस्ती, और संघर्ष के महत्व को दर्शाया गया है, साथ ही किसानों की गरीबी, शोषण, और सामाजिक अन्याय को उजागर किया है,

पंच परमेश्वर- यह कहानी न्याय और ईमानदारी के महत्व पर जोर देती है, जिसमें दो दोस्त अलगू और जुम्मन एक पंचायत में एक दूसरे के खिलाफ खड़े होते हैं। प्रेमचंद ने इस कहानी में किसानों के संघर्षों, उनकी भावनाओं, और उनकी सामाजिक भूमिका को भी दर्शाया है।

ठाकुर का कुआँ-यह कहानी एक दलित महिला की है जो पानी लेने के लिए ठाकुर के कुएं पर जाती है और उसका अपमान किया जाता है। प्रेमचंद ने इस कहानी में जातिवाद और सामाजिक अन्याय को उजागर किया है।

कफन-यह कहानी घीसू और माधव नामक दो गरीब किसानों के बारे में है जो एक कफन खरीदने के लिए पैसे जमा करते हैं, लेकिन उसे शराब पीने में उड़ा देते हैं। प्रेमचंद ने इस कहानी में गरीबी और नैतिकता के बीच संघर्ष को दर्शाया है।

प्रेमचंद ने अपने लेखन में किसानों के जीवन, उनकी गरीबी, शोषण, अंधविश्वास, और उनकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की बारीकि से उजागर किया है। उन्होंने किसानों की समस्याओं को एक आवाज दी और उनके संघर्षों का सहानुभूतिपूर्वक चित्रण किया। शोषण, अन्याय, सामाजिक निष्ठुरता, किसानों एवं गरीब वर्ग की कहानियों को आधार में रखा गया है। इन कहानियों में उनकी मनोभाषिकता का उद्देश्य निश्चित रूप से अपने पात्रों के हृदय के भावों को उजागर करते हुए उच्च आदर्शों एवं सामाजिक मूल्यों की आवश्यकता को महसूस किया जा सकता है। प्रेमचंद की कहानियों में पात्रों की भगवान भक्ति व आस्था का अभाव सामान्य रूप से इसलिए भी रहता है क्योंकि शोषण और अन्याय की प्रत्यक्ष अवस्था और कष्टों में अधिक प्रभावित रहते हैं। मुंशी प्रेमचंद के पात्रों में ईश्वर के मार्ग को मौन एवं भावनात्मक रूप से अनुसरण करने के साथ-साथ, शोषण के प्रति विरोधाभास करते हुए कहानियों में दिखाया गया है।

कहानीकार प्रेमचंद की रचना मनोभाषिकता को अन्य कहानियों बड़े घर की बेटी, बूढ़ी काकी, ईदगाह, दुनिया का सबसे अनमोल रतन, दो बैल, नमक का दारोगा, नयी बीवी, शतरंज की बाजी, दूध की कीमत, राह-ए-नजात, बंद दरवाजा, पंचायत, जेवर का डिब्बा, अमावस की रात, घास वाली, रौशनी, शिकवा शिकायत, मंत्र आदि में भी देखा जा सकता है। जहाँ मुंशी प्रेमचंद निचले तबके के समाज का सहयोग व समर्थन के भाव में लेखन करते हैं, इनमें उनकी मनोभाषिकता भी अत्यंत प्रमुख हैं। इन कहानियों में कथाकार प्रेमचंद ने सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ, सामाजिक शोषण एवं मानवीय संवेदनात्मक मूल्यों पर रचना मनोभाषिकता की बिंबता को प्रस्तुत किया है।

कथा सम्राट द्वारा प्रस्तुत की गई कहानियों में उनके पात्रों की मनोभाषिकता को स्पष्टता तो प्रदान की ही गई है साथ ही सामाजिक परिवेश एवं लोक समाज का स्पष्ट रुख प्रदर्शित किया है। जैसे- कफन कहानी में माधव और घीसू का आचरण, मंत्र में डॉ. चढ्डा का किरदार व बूढ़े व्यक्ति को सर्वोच्च परोपकार, पूस की रात में हल्कू की मानसिक एवं कथाकार द्वारा सामाजिक न्याय एवं समानता की आवश्यकता को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में नायक एवं सामाजिक स्तर पर इस व्यवस्था के लिए उद्घोष प्रस्तुत किया जाना प्रतीत होता है। उनकी कहानी पंच परमेश्वर में वृद्ध द्वारा एक न्याय करने का काम किया गया है जिसमें उनकी न्याय दृष्टि में निष्पक्षता प्रदर्शित होती है। इस कहानी में वृद्ध के द्वारा न्याय फैसला लेने की स्पष्टता को ईश्वरीय मूल्यों के समकक्ष देखा जाना न्याय संगत है।

प्रेमचंद की कहानियों में प्रायः ग्रामीण परिवेश एवं जीवन पर कहानियों को प्रधानता दी गई है। उनकी कहानियों में ग्रामीण क्षेत्रों के अनपढ़, कम पढ़े-लिखे एवं पिछड़े समाज के व्यक्तियों को दृष्टिगत किया गया है, जो कि शोषण, भ्रष्टाचार एवं छल-कपट के द्वारा शोषित किए जाते हैं। उनकी कहानियों में सामाजिक मूल्यों के साथ पात्रों के व्यक्तिगत नैतिक मूल्यों जैसे ईमानदारी, सच्चाई, सरलता, कर्तव्यनिष्ठता आदि पर पर्याप्त प्रभाव डाला गया है। जिसमें कि उनके पात्र एवं पारंपरिक परिवेश एवं व्यवस्था का अनुसरण करते हैं। ऐसे पात्र छल-कपट मुक्त रहते हैं और शोषित एवं कठिन समय का सामना करते हुए दिखाए गए हैं। जो अंत में अपने सकारात्मक बदलाव एवं परिणाम को प्राप्त कर पाते हैं अथवा उनकी मूल दशा से मुक्ति प्राप्त कर पाते हैं।

प्रेमचंद द्वारा अपनी कहानियों ग्रामीण परिवेश एवं समाज की समस्याओं को अधिक प्रस्तुत किया है। उनकी कथाओं में प्रायः निचले एवं दबे कुचले समाज के लोगों को केंद्रित किया गया है। मजदूर, किसान व गरीब समुदाय के लोगों की मनोभाषिकता को व्यक्त करने में मुंश प्रेमचंद की पारदिर्शता का कोई सानी नहीं है।

उनके पात्र समाज में अपने अधिकार एवं न्याय के लिए समस्याओं और समस्याओं के निदान के लिए निरंतर संघर्षरत रहते हैं। उनके पात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति की कठिनाई को भी विकराल समस्या के रूप में पाते हैं। ये पात्र सामाजिक वर्ग में पिछड़े होने के कारण सामाजिक प्रतिष्ठता, सम्मान, समानता एवं गरिमा प्राप्ति को भी संघर्षरत देखे जा सकते हैं।

निष्कर्ष- उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि महान कथाकार एवं कहानी सम्राट मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में जहां ग्राम्य जीवन का पर्याप्त समावेश है। वहीं उनके पात्रों में किसान जीवन के पीड़ित, मजदूर वर्ग एवं शोषित वर्ग समाज के पात्रों के साथ कथा सम्राट की सामाजिक उत्थान वाली मनोभाषिकता दृष्टि को प्रधानता प्रदान की गई है।

संदर्भ-

1.प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ (मुंशी प्रेमचंद साहित्य), जुलूस तथ अन्य कहानियां, प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि, X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-॥, नई दिल्ली-110020, आईएसबीएन 8171824064, पृ.सं. 36
2.वही, पृ.सं. 42
3.वही, पृ.सं. 70
4.वही, पृ.सं. 59
5.वही, पृ.सं. 5
6.वही, पृ.सं. 11
7.वही, पृ.सं. 13
8.वही, पृ.सं. 21
9.https://archive.org/details/premchandkisarvashreshtakahaniyanhindi/page/n25/mode/2up
10.इंटरनेट साभार

पत्राचार हेतु पता-
दीपेन्द्र कुमार शर्मा
पुत्र (स्व.) श्री जगदीश प्रसाद शर्मा
37300जे1, नगला पदी, मैन मार्केट, नियर सुपर मार्केट, आगरा-282005 (उ.प्र.),
मो. 9219793659
ईमेल- up80dk@gmail.com

काव्य खंड

राजकुमार कुम्भज की दस कविताएँ

-राजकुमार कुम्भज

1. पृथ्वी जैसे मेरा घर

मैं गया अंतरिक्ष में
अंतरिक्ष में जाकर देखी मैंने पृथ्वी
पृथ्वी पर देखा मैंने अपना घर
अंतरिक्ष से देखी मैंने अपने घर में
एक स्त्री
एक स्त्री अपने घर में
अपने बच्चों के साथ
जैसे समूची पृथ्वी पर खेल रही है वह
बच्चे देखते हैं घर की तरफ़
घर देखता है स्त्री की तरफ़
स्त्री देखती है मेरी तरफ़
और मैं देखता हूँ पृथ्वी की तरफ़
पृथ्वी जैसे मेरा घर|

2. कुछ-कुछ

कुछ-कुछ उसकी नींद में हूँ मैं
कुछ-कुछ उस नींद से बाहर भी शायद
जिस तरह छोड़कर चली जाती है
वह नींद मुझे
मैं भी छोड़कर चला जाता हूँ
असहाय उसे

पता नहीं, पता नहीं
अब किसका बिस्तर गरमाएगी वह
मैं देखता हूँ, मैं देखता रहता हूँ
उसका कातर चेहरा|

3. अनहद

तांबे के ख़ाली घड़े में
खनखनाता है चाँदी का सिक्का
घन-घनघन, घन-घनघन
पानी हुआ जाता है ग़ायब सब
मनुष्यों ने ली है शपथ
पूर्ववत खाएँगे धोखा
एक-दूसरे की मुठ्ठियों में छुपे हैं पत्थर
जो भी, जैसे भी, जहाँ भी
तलाश करते हैं उन-उन दिमाग़ों की
जो सोचते हैं सच और-और
ख़ालिस-ख़ालिस अब भी
तांबे के ख़ाली घड़े में|

4. अपनी-अपनी आदत अनुसार

अपनी-अपनी आदत अनुसार
बच्चों ने खींच दी हैं कुछ लकीरें रँग-बिरँगी
उन तमाम-तमाम कच्ची-पक्की
सड़कों पर, दीवारों पर
जिन्हें बनाया है कुछेक ठस
और ठोस मसख़रे कारीगरों ने
अपने भुगतानकर्ता आक़ाओं के आदेश पर

रोटी-बोटी के छूत जैसे चक्रव्यूह में
बच्चों द्वारा लकीरें खींचने से ज़रा पहले-पहले तक
वहां खड़े-खड़े मूतते थे
कुछेक ढोरनुमा अभद्रजन
और अपने-अपने गुप्तांगों को
अपनी-अपनी अशुभ आदत अनुसार
लगाते हुए हाथ|

5. पहले मैं फिर दु:ख

पहले आऊँगा मैं फिर आएँगे दु:ख
हरी घास पर रेंगते कीड़े भी हो सकते हैं
अर्थवान और आसपास
उनकी सेवाएँ नहीं जानता रेडक्रास
तो करूँ क्या मैं
रोज़-रोज़ मरता हूँ,
तो क्या फिर-फिर मरुँ रोज़-रोज़
लाशें बिछी पड़ी हैं सड़कों पर
और-और जुलूस-सभा भी
बंद हैं दरवाज़े, अर्थादेश पहुँचते नहीं हैं
ग़रीबों के गंतव्य तक
परिवार-नियोजन के पोस्टरों से
बभरा पड़ा है शहर|

6. है ज़िम्मेदारी दोस्तों की भी

साबित करो, साबित करो
कि दुश्मनों का बढ़ते जाना दरअसल
होता नहीं है दोस्तों का घटते जाना

अगर सच बोलने की आदत
मुझे करती जा रही है हर कहीं अकेला
और बेहद अकेला
तो क्यों और कैसे नहीं है ज़िम्मेदारी
मेरे साथ-साथ, मेरे अपने ही
दोस्तों की भी
है ज़िम्मेदारी दोस्तों की भी
सुलगाएँ सिगरेट|

7. हवा में भरोसा

ख़बर मरती गई फिर-फिर
जैसे-जैसे वह छपती गई अख़बार में
छुपा लिया गया वह सब सच कहीं
जो उफन रहा था समूची ख़बर के भीतर
होते हुए धुआं-धुआं
पल दो पल की बात नहीं थी कोई
सदियों की कहानी थी एक
पेट में दौड़ रही थी रेलगाड़ी ख़ाली-ख़ाली
पटरी-पटरी दौड़ रही थी मृत्यु
और हवा में भरोसा|

8. कुछ नहीं अपना-सा अपना

मसान भी एक जगह है यहाँ
लेकिन कोई भी वहां जाता नहीं है मर्ज़ी से
जो जाता है, आता नहीं है फिर कभी
मुश्किल से ही मिलते हैं दिन चार सभी को
मरने से पहले जीने के लिए

और दिन-रात लड़-झगड़कर ही फिर-फिर
फिर जीतना चाहता रहा हूँ मैं यहाँ
और भूलता रहा हूँ खरा-खरा
वह सब, वह सब
जो इसी जीवन, इसी मृत्यु मिला मुझे
छोड़कर जीना-मरना छोड़कर
हवाओं के हवाले की मनमर्ज़ी में चुप-चुप
जाता हूँ चला जाता रहा हूँ
कुछ-कुछ फ़िक्रमंद
देखते हुए अर्थहीन रफ़्तार ज़मानेभर की
कुछ नहीं अपना-सा अपना|

9. इसी प्रहसन में

किसी भी प्रहसन की गूंज से पहले
ज़रा-ज़रा कौंधती है, गूंजती है गूँज कोई
पुरानी-सी पुरानी
खरे-खरे शब्दों की दुनिया में
यहाँ, इसी दुनिया में, इन्हीं दिनों
बड़ी उथल-पुथल है आजकल
बुलडोज़र लिए चले आ रहे हैं यहीं-कहीं
कुछ अतिक्रमणकारी बेशर्म शब्द भी
और शानदार सज-धज के साथ यहीं-कहीं
वे आ बैठते हैं खरे-खरे शब्दों के साथ
एन बीच-पड़ोस, जुलूस, सभा, बात में
अपने तमाम-तमाम तामझाम के साथ
झांझ-मंजीरे, ढोल-ताशे बजाते हुए
बड़ी मुश्किल में हूँ मैं अपनी कविता के लिए

अकारण ही बदल रहे हैं जीवन के अर्थ
क्या अब से मुझे भी शामिल
होना होगा
इसी प्रहसन में?

10. गलियाँ जीवन की

रास्ते नहीं जाते हैं कभी कहीं
पाँव ही आते-जाते हैं, हर कहीं, हर कहीं
मैं समझता रहा, अभी तक समझता रहा
यही-यही समझता रहा
कि ये जो रास्ते हैं यहाँ, इस दुनिया में
हैं कितने कमतर हैं दरअसल
किसी तूफ़ान के बाद ही देते हैं पता
कि कितनी-कितनी संकरी,
कितनी-कितनी तुच्छ
और धूल, धुंध और धुआं-धुआं हैं
गलियाँ जीवन की|

राजकुमार कुम्भज
331, जवाहरमार्ग, इन्दौर, 452002
फ़ोन,0731-2543380
email: rajkumarkumbhaj47@gmail.com

नरेश कुमार खजूरिया की कविताएँ

1. दियों में तेल डालते हुए

(अग्रज मनोज शर्मा जी को समर्पित)

दियों में तेल डालते हुए
तूम किधर को चल दिए
तुम्हारी आवाज़ की खनक
तुम्हारी कविताओं में सुनेंगे

तुम सा अपनापन
देंगी तुम्हारी कविताएँ?

इतने बड़े होकर तुम
कभी इतने बड़े नहीं लगे
कि लगने लगता-
हमें छोटे होकर भी छोटापन।
तुम बराबर की कुर्सी पर
कैसे बिठा लेते थे मनोज शर्मा!

यह दियों में तेल डालने का समय है
चेता कर
कौनसा प्रकाश खोजने चले गए
अग्रज मनोज शर्मा
शिल्प से बाहर की बात हुई थी....
यह जीवन के भीतर लबालब रहकर
जीवन से बाहर को

क्यों हो लिये।
कवि कमल ने अभी कविता में
तुम्हारी उम्र बताई तो नहीं थी।

2. इसी उम्र में

यह जो उम्र है
जिसमें पूरी और भरी धूप में
पसीने से तर-ब-तर हो
बीजे जा सकते हैं सपने

वह किस्मत को कोस
हजारों लगाने के बाद
एक बार और बचे हुए पैसे लगा कर
करोड़ पति बनने के लिए
अग्रसर हो चुका है....

उसे बड़ा दुख है
इस बात का कि
पिता उसके बेचते हैं
छाबड़ी उठा कर पल्ले*।
इसी दुख में वह थोड़ी बहुत पीने भी लगा है
इसी उम्र में.....

*(जम्मू क्षेत्र में चने की दाल से बनाए जाने वाले और चटनी के साथ परोसा जाने वाला स्वादिष्ट व्यंजन, साम्बा ज़िला इस के लिए विशेष मशहूर है)

3. चेहरा

कल उसने सिर्फ
आँखों की प्रोफाइल पिक लगाई थी....
दो सौ रिक्वेस्ट
एक हज़ार लाईक्स
डेड सो के करीब कमेंट्स एक घंटे में आ गये थे..
फिर उसने सिर्फ
शेयर किये अपने होठ....

फिर उसने मुंह छिपाकर
पीठ को ही साझा किया था .....
मुंह छुपा कर
नृत्य भी किया उसने एक दिन.....
लाईक्स
शेयर
रिक्वेस्ट
कमेंट्स बढ़ते जा रहे हैं.....
देख रहा हूँ
उसके तन के कपड़े और कम होते जा रहे हैं...
मुंह अब भी छुपा हुआ है...
उसके भाई ने भी
कमेंट में लिखा है शायद
"चेहरा तो दिखा दे
क्या माल लग रही हो.... "

4. नदी

नमी
कहीं नहीं है
बरस पड़ें चाहे
अम्बर भर मेघ
भीगते नहीं ज़रा भी।

मैंने छू कर नहीं
डूब कर देखा है-
जितने रूखे हो तुम
लगता है
कोई नदी
नहीं बहती
तुम्हारे आस पास।

5. चूम लूँ

हाथ
कितने सारे हाथ
पैसा बांटते हाथ
गली- चैराहे
बस - मैटाडोर में
पैसे के लिए
पसरे हाथ

कांटे बोते हाथ
कांटे उठाते हाथ
रास्ता बुहारते हाथ
धूल झोंकते हाथ
कितने सारे हाथ
फूल नोचते हाथ
गले दबोचते हाथ
खाली खाली हाथ
बेरोजगार हाथ
भरे भरे हाथ
खून से सने हाथ
कैसे कैसे हाथ

कितने सुंदर हैं
रोटी सेंकते हाथ
रोटी के लिए लड़ते हाथ
चूम लूं
गिरते को थामते हाथ।

नरेश कुमार खजूरिया
गांव व डाकघर- कटली
तहसील डींगा अम्ब, ज़िला- कठुआ
जम्मू कश्मीर, पिन :- 184144
mail. khajurianaresh026@gmail.com

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल' की कविताएँ-

परिचय

मातृभाषा उन्नयन संस्थान के राष्ट्रीय अध्यक्ष, ख़बर हलचल न्यूज़, मातृभाषा डॉट कॉम व साहित्यग्राम पत्रिका के संपादक डॉ. अर्पण जैन 'अविचल' मध्य प्रदेश ही नहीं अपितु देशभर में हिन्दी भाषा के प्रचार, प्रसार और विस्तार के लिए निरंतर कार्यरत हैं। साथ ही लगभग दो दशकों से हिन्दी पत्रकारिता में सक्रिय डॉ. अर्पण जैन के नेतृत्व में पत्रकारिता के उन्नयन के लिए भी कई अभियान चलाए गए। आप 29 अप्रैल को जन्मे तथा कम्प्यूटर साइंस विषय से बैचलर ऑफ़ इंजीनियरिंग (बीई-कम्प्यूटर साइंस) में स्नातक होने के साथ आपने एमबीए किया तथा एम.जे. एम सी की पढ़ाई भी की। उसके बाद 'भारतीय पत्रकारिता और वैश्विक चुनौतियाँ' विषय पर अपना शोध कार्य करके पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। डॉ. अर्पण जैन ने 35 लाख से अधिक लोगों के हस्ताक्षर हिन्दी में परिवर्तित करवाए, जिसके कारण आपको विश्व कीर्तिमान प्रदान किया गया। साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश शासन द्वारा वर्ष 2020 के अखिल भारतीय नारद मुनि पुरस्कार से डॉ. अर्पण जैन पुरस्कृत हुए हैं।

आपको वर्ष 2023 में जम्मू कश्मीर साहित्य एवं कला अकादमी व वादीज़ हिन्दी शिक्षा समिति ने अक्षर सम्मान व वर्ष 2024 में प्रभासाक्षी द्वारा हिन्दी सेवा सम्मान से सम्मानित किया गया है। इसके अलावा आप सॉफ़्टवेयर कम्पनी सेन्स टेक्नोलॉजीस के सीईओ हैं, साथ ही लगातार समाज सेवा कार्यों में भी सक्रिय सहभागिता रखते हैं। कई दैनिक, साप्ताहिक समाचार पत्रों व न्यूज़ चैनल में आपने सेवाएँ दी है। साथ ही, भारतभर में आपने हज़ारों पत्रकारों को संगठित कर पत्रकार सुरक्षा कानून की मांग को लेकर आंदोलन भी चलाया है।

1. शब्द ही बोलेंगे

एक दिन जब हम ख़ामोशी ओढ़ लेंगे,
शब्द हमारे तब भी अपना शोर करेंगे।
चीखेंगे, चिल्लायेंगे और करेंगे क्रांतियाँ,
हम तो सो जाएँगे पर शब्द हमारे बोलेंगे।

सड़कों पर निकलेंगे जुलूसों-जलसों में,
किसी अबला की ये आवाज़ बनेंगे।

किसी ग़रीब का हक़ बनकर आएँगे,
ये ही बच्चों की पीड़ा को बयां करेंगे।

चूल्हे और चक्की के दर्द को कहेंगे,
कुएँऔर नदी की पीड़ा समझाएँगे।

ये शब्द ही शहर को आक्रान्तित करेंगे,
हम तो फिर भी अपनी चुप्पी ओढ़ लेंगे।

पर शब्द हमारे ख़ूब चीखेंगे और बोलेंगे,
ये शब्द मुद्दों पर पल-पल याद आएँगे।

शब्द मेरे, आपको भीतर से जगाएँगे,
शब्द ही मानवता का अंतर्नाद करेंगे।

शब्द भाषाई व्याकरण से तो मुक्त रहेंगे,
पर सामाजिक ताने बाने को तो गाएँगे।

ये शब्द किताबों में कभी दम नहीं तोड़ेंगे,
ये आपका स्वर बनकर दोहराए जाएँगे।

शब्द ही समाज को बार-बार समझाएँगे,
हर उठने वाले धुएँ के विरुद्ध खड़े होंगे।

शब्द ही मानवता का एहसास करवाएँगे,
शब्द ही मेरे होने का भान करवाएँगे।

एक दिन जब हम ख़ामोश हो जाएँगे,
यही शब्द मेरी उपस्थिति दर्ज करवाएँगे।

2. अचानक यहाँ तक...

कन्धों पर चढ़कर यहाँ तक नहीं आए हैं
रात से सुबह तक में यहाँ तक नहीं आए हैं
सहे हैं कई दर्द और घाव पैरों ने सफ़र में
किसी की बदौलत यहाँ तक नहीं आए हैं

बड़ी मेहनत से बुना है हमने भी ताना-बाना
किसी की गाली सुनी किसी का सुना गाना
मुद्दतों से चल रहे थे सफ़र में हम भी अकेले

हमनें भी ज़िद में कहाँ ठोकरों का बुरा माना

ये कोशिश तो हर बार करते रहे हम भी
भरोसे पर अपनों के चलते रहे हम भी
कभी पीर अंदर की नहीं होने दी बयाँ
अपने हिस्से की मेहनत करते रहे हम भी

ज़माने की नज़रों में नज़र नहीं आए
इसीलिए यहाँ तक भी हम चल पाए
दास्ताँ कहते तो रो देती ये दुनिया
सुना कुछ भी नहीं इसलिए संभल पाए।

3. कैसे हम आज़ाद हैं?

आज़ाद कहने लगे ख़ुद को,
ख़ुद को मान बैठे हैं हम आज़ाद।
पर किससे मिली आज़ादी हमको?
यह सवाल अभी भी अनुत्तरित है।
न हमें धार्मिक उन्माद से आज़ादी मिली,
न धर्म पालने की आज़ादी मिली,
न भूखे बच्चे रोना बन्द हुए,
न सड़कों पर भिक्षा माँगती स्त्री हटीं,
न ही धूल और धुएँ से आज़ाद हो पाए,
न रिश्वत और भ्रष्टाचार का बोलबाला कम हुआ,
न लम्पट नेता और भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी हटे।

हाँ, ऊँची-ऊँची इमारतें ज़रूर बन गईं,
पर आज भी मेहनतकश मज़दूर
भारत में रोता मिलना बंद नहीं हुआ।
न दवा के अभाव में मरते लोग समाप्त हुए,
न उच्च गुणवत्ता के बीज आना प्रारंभ हुए,
न मानसिक बलात्कार करते लोग हुए ग़ायब।
नहीं हुआ भोर बासंती अब तक,
नहीं हुआ शोर राष्ट्र का अब तक,
आँख दिखाता अमरीका अभी भी है,
और घुसपैठ करता पाकिस्तान ज़िंदा है।
मिसाइल तो आ गई पर शांति!
शांति नहीं दिखाई देती भूभाग पर।
श्वेत कपोत उड़ते तो हैं पर,
पर क्या... केवल पर कटे हुए।
अब तक नहीं हुई भोर राष्ट्रगन्ध की,
न सूरज निकला तकनीक का अब तक,
न थका हुआ चक्र अब चल रहा,
न लहराते खेत ज़िंदा दिख रहे,
किसानों की आत्महत्याएँ बंद नहीं हुईं,
न नशे से मुक्त युवा पीढ़ी हुई,
फिर कैसा पंद्रह अगस्त आ गया,
जहाँ अब तक अंग्रेज़ियत से आज़ादी नहीं मिली!
अब तक गुलामी की भाषा पर घमण्ड जारी है,
और ग़ुलामी के दस्तावेज़ों का संग्रहालय है भारत।

फिर कैसे कहें आज़ाद हैं हम?
कैसे कह दें स्वाधीन भोर होती है?
कैसे कह दें नरपिशाचों की बलि हो गई?
कैसे कह दें वनिता भीनी हो गई?
ग़मगीन वसुंधरा के घाव अब भी हैं,
बदस्तूर जारी है छलनी होती धरती।
कई सरकारें आईं और कई चली गईं,
आगे भी आएँगी, कई चली जाएँगी,
पर भारत के ललाट का पसीना
अब भी है जस का तस।
रक्तरंजित केसर की क्यारी आज भी है,
गंगा और गोदावरी का जल लाल आज भी है,
आज भी देश में सांप्रदायिकता का भूचाल है।
फिर कैसे कहें हम स्वतंत्र भारत के भाल हैं?
कैसे कह दें हम आज़ाद और ख़ुशहाल हैं?

बताओ...?

4. मनुष्य का आविष्कार

कृत्रिम विकास ने
अट्टालिकाओं की वृहद् शृंखला बना ली
बड़ी-बड़ी गगनचुम्भी इमारतें
विशाल फ्लाइओवर और ओवर ब्रिज
आलीशान सड़कें और

पैदल यात्रियों के पथ
और तो और
सीमेन्ट-कांक्रीट के घने जंगल
ये सब मनुष्य ने
अपनी सुख सुविधाओं के लिए
बना तो लिया परंतु
उजाड़ दिए पक्षियों के घर,
जीव-जन्तुओं के आशियाने
तोड़ दी नदियों की धारा
पहाड़ों की शृंखलाएँ,
नई विकसित होती हुईं कॉलोनियों को देखकर,
लगता तो ऐसा है कि आने वाली पीढ़ी
क्या पहाड़ देख भी पाएगी?
शायद नहीं!

जैसे नहीं देख पा रही पठार,
जैसे नहीं देख पा रही कौवे,
जैसे नहीं देख पा रही अन्य जीव,
फिर दादी सिर्फ़ सुनाएगी कहानी में
एक था पहाड़, एक था पर्वत।

शायद, मनुष्यों का आविष्कार ही
ईश्वर की सबसे बड़ी भूल रही होगी....
है न...?

5. गुरुत्वाकर्षण

जैसे लौटती है बूंद,
वैसे ही लौटती है ज़िन्दगी।

जैसे लौटता है समय,
वैसे ही लौटती हैं स्मृतियाँ।

जैसे लौटती है चिड़िया,
वैसे ही लौटता है कलरव।

जैसे लौटती है कविता,
वैसे ही लौटती है किताबें।

जैसे लौटती हैं पुरानी कतरने,
वैसे ही लौटती हैं पुरानी चिट्ठियाँ।

जैसे लौटते हैं मनुष्य,
वैसे ही लौटती है मनुष्यता।

यही गुरुत्वाकर्षण का
अबोध सिद्धांत है।

हर चीज़ लौटती है,

अपने समयानुशासन में.....

है न....?

6. यात्रा सुख

यात्राओं में अक्सर
एक तलाश रहती है,
एक खोज रहती है,
एक साधना रहती है।

ये यात्राएँ,
मनुष्य को भी
मनुष्य की तरह रहना सिखाती हैं,
पशु-पक्षियों के घर दिखते हैं,
उनके महलों की सुंदरता देखने
ये मनुष्य प्रजाति के लोग जाते हैं
और,
और क्या...
बिगाड़ते हैं उनके बसर को,
उजाड़ते हैं उनके घरोंदों को,
यह सब यात्राओं में सायास दिखता है,
इसलिए यात्राएँ मनुष्य को मनुष्यता सिखाती है।

और ये यात्राएँ

आनंद के चरमोत्कर्ष को
अपने साथ सहयात्री की तरह
लेकर चलती हैं अपने गंतव्य तक।

ये यात्राएँ,
अमरता का पाठ भी पढ़ाती हैं,
जीना भी सिखाती हैं ये यात्राएँ।

एकाग्र मन से की गई हर यात्रा
मनुष्य की चेतना को जागृत करती है,
इसीलिए आदमियों की प्रजाति में,
यात्राओं का सुख सदैव बना रहा है।

7. भीतर शब्दों का श्मशान है

मुख से दुर्गन्ध आ रही थी,
आत्मा प्रक्षेपण कर रही थी,
दोनों आँते झकझोर रही थीं
चमड़ी यकायक तड़प रही थी।

मानवता भी शर्मशार हो रही थी,
हथियारों पर घमण्ड कर रही थी,
विकास की इमारतें टूट रही थीं
धर्म की अर्थियाँ रोज़ सज रही थीं।

विश्व में तम का आधिपत्य हो गया,
झूठी तरक़्क़ी मुँह बाहें खड़ी रही,
भाषा और मनुष्यता मर चुकी थी
मेरे भीतर के शब्द खोखले हो गए।

शरीर के भीतर कुछ नहीं बचा,
सूखी रग, तड़पती चमड़ियाँ और,
भूख से सुलगती आन्तड़ियाँ
शब्दों के श्मशान में बदल गईं।
और इसीलिए मुँह दुर्गन्धमय हो गया,
इसीलिए मेरे भीतर शब्दों का श्मशान बच गया,
मेरे भीतर शब्दों की लाशों का अंतिम संस्कार हो रहा था।

8. मौन है मज़दूर की मजबूरी भी

हलधर भी चुपचाप खड़ा है,
मज़दूर भी देख रहा तमाशा,
तमगे बाँटने वालों को देख,
देश में आ रही तेज़ निराशा।

कैसी सुबह मज़दूर दिवस की!
कतारें लगी हैं मई दिवस की,
वो खोज रहा अपना मालिक,
तलाश है दो जून की रोटी की।

कभी तो वो बनाता अट्टालिकाएँ,
प्राचीर विशाल इमारतों की नींव,
और ख़ुद कभी कंगूरों के बोझ से,
माटी को कफ़न बना ओढ़ लेता है।

शाम कभी मक्की की रोटी में,
लहसुन की चटनी के साथ ही,
अपने दिनभर की थकान और भूख,
पानी को दाल समझ खा जाता है।

कभी बच्चों की भूखी आँखों को देख,
ख़ुद भूखा रहकर बच्चों को सुलाता है,
श्रम से उसके राष्ट्र बढ़ता है पर,
वो शर्म के सहारे ही जी जाता है।
आखिर कब तक...?

वो मज़दूर अपनी बेबसी पर
दुनिया को आयोजनों का मौका देता,
और ख़ुद कहीं नींव में निर्माण के लिए,
ख़ुद के वजूद को कंगाल करता रहे,
आखिर कब तक...?

कोई सुबह तो तलाशे उसकी पीड़ा,
कोई उसकी लाचारी को भी समझे,

तभी बढ़ेगा हम वतन हिंदुस्तान,
कोई तो उसके श्रम की क़ीमत समझे।

9. पचास बरस बाद...

जब तरक़्क़ी की
गगनचुंबी इमारतें तनी होंगी
शायद सदी के प्रेमी इसी धरा पर
एक छंद बुन रहे होंगे
वे खोज रहे होंगे
पेट की भूख का समाधान
वे ताक रहे होंगे
निवालों की तरफ़
जैसे बच्चे भूख से
बिलख कर भागते हैं
मर रहे होंगे
रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए
जलाए जा रहे होंगे
पानी की लड़ाई के लिए
नदी, तालाब, पोखर
सब सूख चुके होंगे
और तब तक तो
पेड़ धड़ाधड़ कट चुके होंगे
मानव अपनी प्रगति पर
इतरा तो रहा ही होगा

पर वो मानवता के निधन पर
शोक भी जता रहा होगा
जहाँ तिमिर भी
भयावह व्याप्त हो रहा होगा
शायद देवता
अपने पूजाघरों से निकलकर
चौराहों पर रो रहे होंगे
वो इसलिए रो रहे होंगे कि
पचास बरस में लोग
उनके नाम पर ही लड़ गए
बिल्कुल बदल ही गया होगा ज़माना
क्योंकि तब
सब कवि
अपनी कविता को
तवे पर सेंक कर
रोटी बना रहे होंगे
और प्रेमी
फिर भी छंद बुन रहे होंगे
भूख के...
पचास बरस बाद
सब कुछ अलग होगा
विस्तार तो होगा पर
विचार अधमरा होगा
जागना तब ज़रूरी समझा जाएगा

कि काश! हम संभल जाते
पचास बरस पहले 'अवि'...

10. जेब में ज़ब्त भूख

सुबह जब घर से निकलता
मक्के की रोटी के संग में
थोड़ा प्याज़ भी रख चलता

काम पर जाना मेरी ज़रूरत है
घर-बार, बच्चे और बीमार माँ
उसके इलाज और दवा के लिए
कुछ बन्दोबस्त करना ज़रूरी है

इसी ऊहापोह के बीच मैं
भूल जाता हूँ अपनी भूख
क्योंकि मुझे याद आते हैं
घर पर भूख से बिलखते बच्चे

कुंवार की धूप में थोड़ी ठंडक
ढूँढते-ढूँढते मैं अचानक एक ठंडी
छाँव की तलाश कर बैठता हूँ
पेड़ों के नीचे बैठ कर शांति से

कपड़े में बांध जो लाया मेरा खाना

मुझे चिढ़ाता है तो कभी समझाता
फिर शुरू होता है भूख से संघर्ष
आँतों की बगावत एक अध्याय है

कभी खाता हूँ तो कभी संग में
वापस ले जाता हूँ अपना खाना
जिस दिन नहीं मिलती कोई मज़दूरी
कहता हूँ सेठ ने खाना खिला दिया

ताकि मेरे साथ बंधे खाने से
शाम को इतंज़ार करते मेरे बच्चे
मेरा घर अपनी भूख मिटा सके
मेरी बूढ़ी बीमार माँ कुछ खाये

इस तरह मैं फटी जेब में अपनी
ज़िम्मेदारियों के अधनंगे बदन
चिल्लाती मजबूरियों को संभाले
भूख की ज़ब्ती कर लेता हूँ.....

हाँ! मैं भूख की ज़ब्ती करता हूँ.....
क्योंकि मैं एक मज़दूर हूँ।
जो कर्त्तव्य वेदी पर ख़ुद होम होता
अपनी आह की तपन से अपने
घर को हमेशा दूर ही रखता है.....